भाग्य-चक्र

[एक नाटक तीन अंकों में]

●

सुदर्शन



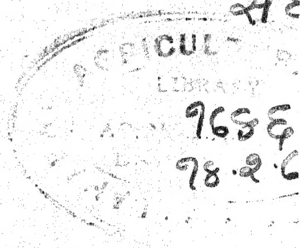
वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड
३, राउंड बिल्डिग, बम्बई–२

चौदहवाँ संस्करण
१९७०

मूल्य : ३)

Rs 4-00

प्रकाशक :
के० के० वोरा
वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि०
३, राउंड बिल्डिंग,
बम्बई–२



मुद्रक :
इलाहाबाद प्रेस,
३७०, रानीमंडी
इलाहाबाद–३

भूमिका

आज से लगभग चालीस साल पहले लॉ कालेज, लाहौर के उस समय के प्रिन्सिपल लाला कुंवरसेन ने उस वक्त के हिन्दुस्तानी नाटक पर आलोचना करते हुए लिखा था :

'नाटक और तमाशे जो आजकल दिखाए जाते हैं, उनमें से ज्यादा ऐसे हैं, जिनमें नाटक की कोई बात भी नहीं पाई जाती। कुछ-एक को छोड़कर बाक़ी सब नाटकों के कथानक कमज़ोर, भाषा भद्दी (बल्कि कभी-कभी बाज़ारू) और गीत वे जिनमें अँग्रेजी गीतों को देशी रागों में ऐसी बुरी तरह मिलाया जाता है, कि भगवान् ही बचाए। समझदार लोग आजकल थियेटर देखना पसन्द नहीं करते। अगर कभी शौक़ उन्हें पंडाल के अन्दर ले भी जाता है, तो वे बेतुकी चीज़ें सुनते ही उठ खड़े होते हैं। मतलब यह कि आज-कल हिन्दुस्तानी नाटकों में सुरुचि का खून होता है।'

चालीस साल के बाद भी हम इस आलोचना को फिर से पढ़ते हैं, तो मालूम होता है कि कुछ सज्जनों ने हिन्दुस्तानी नाटक को गढ़ों से निकाल कर आकाश तक पहुँचाने की कोशिशें की हैं, और उनकी कोशिशें किसी अंश तक सफल भी हुई हैं, लेकिन हिन्दुस्तानी नाटक में ऐसी उन्नति नहीं हुई कि देश के हर हिस्से से दिखाई दे और रंगमंच पर ऐसे नाटक खेले नहीं गए, जिन्हें देखकर मुँह से आह या वाह निकल जाए। न हमारे देश की किसी भाषा में ऐसे नाटक अभी तक हैं जिन्हें हम साहित्य और कला के पारखियों के सामने गर्व से उपस्थित कर सकें।

इसका कारण यह है कि जो साहित्यिक सूझ बूझवाले हैं, और जिनकी आँखें नाटक की अच्छाइयों और बुराइयों को पहचानती हैं, उनमें दो तरह के लोग हैं। एक वे जिनकी रंगमंच तक पहुँच नहीं, दूसरे वे जिन तक

रंगमंच की पहुँच नहीं। परिणाम यह हुआ कि कुछ अच्छे नाटक तैयार हुए, उन्हें रंगमंच न मिला। कुछ नाटक वालों ने अच्छे नाटक ढूँढे, उन्हें अच्छे नाटक न मिले। रंगमंच खाली रह गया, नाटक एक-दो बार छप-छपा कर समाप्त हो गए। रंगमंच ने फिर वह बातूनी और बेसमझ मुंशी पकड़ लिये, मुंशियों ने फिर बाज़ारू और कुरुचिपूर्ण चीज़ें देनी शुरू कर दीं, जिन से सुरुचि जागती नहीं, परे भागती है। इन मुंशियों में बहुत से तो ऐसे हैं, जिन्होंने न अच्छे नाटक पढ़े हैं, न अच्छे नाटक की बारीकियाँ समझी हैं। उनके पात्र न हम लोगों की तरह रहते हैं, न हम लोगों की तरह बोलते हैं। इसलिए वे दुनिया से बाहर के जीव हैं, और जीवन को छूने की उनमें शक्ति नहीं। यद्यपि नाटक का सबसे बड़ा गुण यही है कि उसकी जड़ें जीवन में गड़ी हों, और वह जीवन से ऊपर तो उठे, मगर जीवन से दूर न चला जाए।

इस बीच में जो दो-चार अच्छे साहित्यिक नाट्यकार रंगमंच की ओर आ निकले थे, उन्हें बुढ़ापे ने कोने में बिठा दिया, या, मौत ने अंधकार में धकेल दिया। इधर सिनेमा अपना रंग और रूप लेकर आगे बढ़ा। बच्चा था तो क्या हुआ, शेखियों की उम्र थी, शरारतों के दिन थे, देखते-देखते उसने नाटक को चारों खाने चित्त गिरा दिया और उसके राज्य पर अधिकार जमा लिया। अब हाल यह है कि चारों खूँट सिनेमा का सिक्का चलता है, नाटक को कोई पूछता भी नहीं। कल हर जगह शासन करता था, आज दर-दर भीख माँगता है।

लेकिन, अगर हिन्दुस्तानी साहित्य को उन्नति के मैदान में आगे बढ़ना और ऊपर उठना है, तो उसे अपने नाटक को फिर से अपने आसन पर बिठाना होगा। सिनेमा का शौक़ यूरोप और अमरीका में हिन्दुस्तान से कम नहीं। वहाँ एक-एक चल-चित्र पर इतना रुपया खर्च होता है कि हम सुनकर विश्वास ही नहीं करते। मगर, वहाँ नाटक की जगह अब भी मौजूद है। हमारे एक मित्र ने, जो अभी यूरोप और अमरीका होकर आये हैं, हमें बताया है कि वहाँ जब कोई नया नाटक खेला जाता है, तो छः छः

महीने तक सीटें पहले बुक हो जाती हैं। एक हमारा देश है कि यहाँ न कोई अच्छी नाटक कंपनी बनती है, न कोई अच्छा नाटक खेला जाता है।

नाटक केवल मन बहलाव की चीज नहीं। नाटक साहित्य के बाग़ की बहार है। नाटक कला के यौवन की अंगड़ाई है! नाटक साहित्य की रगों में जोश और जवानी का लहू है। जिस भाषा में नाटक नहीं, वह भाषा ग़रीब है और जिस देश के पास यह चीज़ नहीं, वह प्रचार के सब से बड़े साधन से वंचित है।

सुदर्शन

पात्र-परिचय

●

पुरुष

हीरालाल	पंजाब का एक प्रसिद्ध लखपति
शामलाल	हीरालाल का भाई
शंकरदास	एक बदमाश
दुर्गादास	एक ग़रीब आदमी
सूरदास	काशी का अंधा गवैया
बाटलीवाला	कालिदास नाटक कंपनी का पारसी मालिक
जयकृष्ण	बाटलीवाला का सहकारी
दिलीप	हीरालाल का बेटा
दीपक	दिलीप का दूसरा नाम
भंडारी	एक इंजीनियर

नौकर, दरबान, साधु, यात्री, धोबी, दरजी, दर्शक, विद्यार्थी, पुलिस के आदमी, जासूस, डाकिया, डाक्टर, मसखरा।

●

स्त्री

लाजवन्ती	शामलाल की स्त्री
कल्लो की माँ	सूरदास की दासी
रूपकुमारी	एक पढ़ी-लिखी लड़की
यशोदा	रूपकुमारी की माँ

आया, साधुनी, लीला, नर्स आदि।

स्थान—लाहौर और काशी

समय—सन् १६०८ से १६३३

●

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—लाहौर में शामलाल का घर
समय—प्रातःकाल नौ बजे

[शामलाल एक शानदार मेज के सामने बैठा है; और शंकरदास से बातचीत कर रहा है ।]

शाम० : शंकरदास ! तुम कहोगे, मैं कैसा आदमी हूँ ? मगर भई मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता, कि मेरे भाई साहब मेरे साथ ऐसा अनर्थ भी कर सकते हैं ?

शंकर० : अब मैं क्या कहूँ इस बारे में ?

शाम० : (सुना अनसुना करके) मैंने उनकी कितनी सेवा की है, यह वे भी जानते हैं । सारा दिन घूमता फिरता हूँ, रात के दो-दो बजे आकर खाना खाता हूँ । उनका जितना कार-बार है—लेना-देना, मुकदमे करना, मकान बनवाना, खरीदना, बेचना, सब का भार मैंने सँभाला है ! दो दिन दफ्तर न जाऊँ, तो सारा काम-काज चौपट हो जाए । एक दिन खुद कहते थे—मेरा सारा कार-बार तू ही करता है; तू न हो, मेरा काम औंधा हो जाए ।

शंकर० : अरे भाई ! ये भी क्या कहने की बातें हैं ? सारी दुनिया जानती है । दुनिया अंधी नहीं है ।

शाम० : और इसका इनाम यह है, कि जब अपना दान-पत्र तैयार करने लगे, तो मेरा ध्यान तक न आया ! सब सम्पत्ति बेटे के नाम—

मेरे नाम एक पैसा भी नहीं । गरदन काटके रख दी मेरी !

शंकर० : कहते होंगे, नौकरी करता है, वेतन लेता है । अब और क्या दूँ ? नौकर को कोई घर उठा कर थोड़े ही दे देता है !

शाम० : मगर नौकर नौकरी करता है, मालिक के लाभ-हानि की परवा नहीं करता । अगर मैं भी नौकरी करता, तो आज श्रीमान्‌जी के लाखों रुपये बैंक में जमा न होते । मेहनत बैल करता है, मज़े किसान उड़ाता है ।

शंकर० : इसमें क्या संदेह है ? अगर कोई चालाक आदमी होता, तो पहले अपना घर भरता, फिर भाई का ख्याल करता । पहले अपना आप, पीछे प्रभु का जाप ।

शाम० : हम धर्मात्मा ही बने रहे !

शंकर० : मगर आज-कल धर्मात्माओं को पूछता कौन है ? कोई भी नहीं ।

शाम० : तुम्हारी यह बात झूठ ! मैं मानता हूँ, कि समय बदल गया है । धन हर जगह इज्ज़त पाता है । मगर अब भी ऐसे लोगों का अभाव नहीं, जो धनवानों के सिर पर भी नहीं बैठते, महात्माओं के चरण चूमते हैं । सच पूछो, तो संसार ऐसे ही महात्माओं के बल पर खड़ा है । वर्ना नरक बहुत दूर नहीं है ।

शंकर० : लोग धर्म का सम्मान करते हैं इसमें सन्देह नहीं, मगर उसी समय तक, जब तक उसके पास पैसे हैं । परन्तु इधर धर्म की जेब खाली हुई, उधर लोगों के दिल बदल गए । आपने मेरा अभिप्राय तो समझ लिया ना ?

शाम० : (मुस्कराकर) तुम्हारी बातें कोई माने या न माने, मगर तुम्हारी बातें हैं दिलचस्प !

शंकर० : एक दृष्टांत लीजिए । आपके पास चार आदमी अच्छे वस्त्र पहनकर और मोटरकार में बैठकर आते हैं, और किसी आश्रम या

अनाथालय या विद्यालय के लिए दान माँगते हैं। आप पाँच-सात सौ रुपया दे देते हैं। मगर आप के पास कोई ब्राह्मण नंगे पाँव, नंगे सिर, फटी-पुरानी धोती पहने आता है, तो पहले तो महाराज! आपके दरबान उसे घर में घुसने ही नहीं देंगे। और फिर अगर उनका दिल ग़रीब की मिन्नत-समाजत से पिघल गया, और उन्होंने कृपा करके उसे आपकी सेवा में उपस्थित होने का अवसर दे दिया, तो भी आप उसे क्या देंगे? दो-चार रुपये, और वह भी उपेक्षा से। मैं पूछता हूँ यह क्यों? माँगने दोनों आए थे, धर्म दोनों थे, ज़रूरत दोनों की सच्ची थी।

शाम० : (दिलचस्पी लेते हुए) कहे जाओ, मैं सुन रहा हूँ।

शंकर० : मगर पहले आदमियों को आपने सम्मान भी दिया। धन भी दिया। दूसरे आदमी को न सम्मान दिया, न धन दिया। यह क्यों? केवल इसलिए, कि पहली अवस्था में धर्म कोट-पतलून पहनकर आया था, और मोटरकार में बैठकर आया था। दूसरी अवस्था में धर्म नंगे-पाँव आया था, और पैदल चलकर आया था। गोया पहला धर्म अमीर था, दूसरा धर्म ग़रीब था।

शाम० : (मुस्कराकर) यह तो तुमने एक नई बात कह दी। मगर यार, यह नई बात है सोलह आने सच।

शंकर० : आज आप अमीर हैं, आपके हाथ में भाई का कामकाज है, आपके पास रुपया-पैसा है। आपका सभी मान करते हैं। कल आप ग़रीब हो जाएँ, तो कोई आपकी बात भी न पूछेगा, कोई आपकी तरफ़ आँख उठाकर भी न देखेगा, कोई आपको देखकर भी न देखेगा।

शाम० : मगर मन का संतोष तो रहेगा मेरे पास!

शंकर० : सोलहों आने सच! मगर मुश्किल यह है, कि यह मन का संतोष भी आज-कल के युग में किसी काम नहीं आता।

[शामलाल एक पैंसिल के साथ खेलता रहता है और कुछ सोचता जाता है।]

शंकर० : और महाराज, मेरी तो यह धारणा है, कि आज-कल

यह मन का संतोष भी चाँदी-सोने के तोल बिकता है। जिसके पास चाँदी-सोना नहीं, उसके पास संतोष कहाँ ? ज़रा सोचकर जवाब दीजिए। मेरी बात में ज़ोर है।

शाम० : (गम्भीरता से) मैं तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता।

शंकर० : बहुत अच्छा !

शाम० : तुम्हारी युक्तियों में बल है, मगर इनमें सार नहीं। और जिसमें सार नहीं है, उसमें कुछ भी नहीं है।

शंकर० : मगर......

शाम० : भाई साहब ऐसा कभी नहीं कर सकते। और देख लेना, वे ऐसा कभी नहीं करेंगे।

शंकर० : मैं तो स्वयं चाहता हूँ, ऐसा ही हो। मुझे इससे दुःख थोड़ा ही होगा। भगवान् आपकी कामना पूरी करे।

शाम० : और मुझे विश्वास है, ऐसा ही होगा। मैं अपने भाई को तुमसे ज्यादा जानता हूँ—तुमने उन्हें दूर से देखा है, मैंने उन्हें पास से देखा है। तुम उन्हें कभी-कभी देखते हो, मैं उन्हें हर रोज़ देखता हूँ।

शंकर० : (उठकर जाने को तैयार होते हुए) मगर कई चीज़ें ऐसी भी हैं, जो पास से दिखाई नहीं देतीं। और हर रोज देखने से उनकी महत्ता जाती रहती है।

शाम० : (पाँव फैलाकर बैठे-बैठे) मैं पूछता हूँ, तुम यह विष मेरी खोपड़ी में क्यों भरना चाहते हो ?

शंकर० : (जाते-जाते रुककर) श्रीमान्जी, मैं आपकी खोपड़ी में विष नहीं भरना चाहता, मैं आपको और आपके भविष्य को विनाश से बचाना चाहता हूँ। आपको याद है, आपने मेरे साथ दो बार भलाई की है। आपको उसकी कीमत देना चाहता हूँ। मेरे सिर पर आपका ऋण है।

शाम० : मगर मुझे अब भी विश्वास नहीं होता, कि भाई साहब मेरे साथ ऐसा अन्याय कर सकते हैं।

शंकर० : इसका कारण यह है कि आप सीधे-सादे हैं। और जो सीधा-सादा होता है, उसे छल-कपट दिखाई नहीं देता !

शाम० : (क्रोध से) मैं सीधा जरूर हूँ, मगर मैं मूर्ख नहीं हूँ। अगर वे मुझे मूर्ख समझते हैं, तो यह उनकी भूल है। उन्हें अपनी राय बदलनी पड़ेगी।

शंकर० : (फिर बैठकर) मेरा कहना केवल यह है, कि आप अपना प्रबन्ध कर लें। जो अपना घर सम्भाल कर रखता है, वह चोर की शिकायत नहीं करता। जो बेपरवाही करता है, वह रोता है, और पछताता है।

शाम० : (सोचकर) देखो ! क्या तुम मुझे कल मिल सकते हो किसी समय ?

शंकर० : कहाँ मिलूँ ?

शाम० : यहीं मेरे घर में।

शंकर० : बहुत अच्छा ! मैं उपस्थित हो जाऊँगा। अगर मेरी सहायता से आपका भला हो जाए, तो मुझे खुशी होगी।

[शंकरदास विजयी ढंग से चला जाता है। शामलाल उठकर इधर-उधर टहलता है और सोचता है—शायद यह कि उसे क्या करना चाहिए ? कुछ देर बाद वह फिर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ जाता है, और अपनी घड़ी की जंजीर के साथ खेलने लगता है। इतने में उसकी स्त्री लाजवंती धीरे-धीरे आती है, और उसकी कुरसी के पीछे खड़ी हो जाती है। शामलाल चुपचाप उसी तरह अपने विचार में निमग्न रहता है, जैसे उसने अपनी स्त्री को देखा ही नहीं है।]

लाजवंती : आज यह महात्माजी इस तरह समाधि लगाए क्या सोच रहे हैं ?

शाम० : (मुस्कराकर) महात्माजी कुछ नहीं सोच रहे।

लाजवंती : (सामने आकर) महात्माजी झूठ बोल रहे हैं।

शाम० : मानो, तुम मेरे मन का हाल भी जान सकती हो ? तो

बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ ?

लाज० : मैं यह नहीं बता सकती कि आप क्या सोच रहे हैं ? मगर मैं यह बता सकती हूँ, कि आप जो कुछ सोच रहे हैं, उसे मुझसे छिपा रहे हैं।

शाम० : हूँ।

लाज० : और मैं यह बता सकती हूँ, कि जो चीज़ छिपाई जाती हूँ, वह अच्छी नहीं होती ! अच्छी चीज़ को कोई नहीं छिपाता।

शाम० : (उसी तरह अपनी घड़ी की जंजीर को अँगुली के गिर्द घुमाते हुए) लाज ! आज मैं चिन्ता में हूँ, और मेरी चिन्ता बहुत बड़ी है। मैं सोच रहा था...

लाज० : (साथ की कुरसी पर बैठकर और पति के हाथ से जंजीर छीनकर) अब बताइए, क्या सोच रहे थे आप ?

शाम० : मैं सोच रहा था, अगर आज भाई साहब मुझे नौकरी से जवाब दे दें, तो मैं क्या करूँ ?

लाज० : (जंजीर लौटाते हुए) ऐसी भयानक बातें सोचने से तो यही अच्छा है कि आप अपनी जंजीर के साथ खेलते रहें।

शाम० : (सोचते हुए) अब मेरे लिए और कहीं नौकरी मिलनी भी कठिन है। इस आयु में कौन नौकरी देगा मुझे ? सारी आयु तो भाई की गुलामी में गुजार दी।

लाज० : मगर आपको उन पर संदेह कैसे हो गया ? आप तो कहा करते हैं कि ऐसा भाई दुनिया भर में किसी का न होगा। आप तो कहा करते हैं कि आपका भाई, भाई नहीं, देवता है।

शाम० : (ठंडी आह भरकर) शायद यह मेरी भूल थी।

लाज० : (गम्भीरता से) बात क्या है ?

शाम० : बात यह है, कि भाई साहब ने अपना दान-पत्र लिखा है, कि उनके बाद उनकी सारी सम्पत्ति दिलीप को मिले, मुझे कुछ न मिले। यह समाचार मुझे अभी-अभी मिला है।

लाज० : और आपने इस पर विश्वास भी कर लिया है ?

शाम० : और क्या करूँ ? तुम ही बताओ ।

लाज० : भगवान् पर भरोसा रखकर अपना काम करते जाइए ।

शाम० : (हैरान होकर) क्या कह रही हो तुम ? तुमने कुछ सोचा भी है ?

लाज० : आपके भाई साहब भाई हैं, कसाई नहीं हैं, जो हमारे गले पर इस तरह छुरी चला देंगे । और मैं तो इससे भी आगे जाने को तैयार हूँ । अगर वे अपनी सारी जायदाद अपने पुत्र को देना चाहते हैं, तो इसमें अनर्थ ही क्या है ? हम काम करते हैं, वेतन लेते हैं । हमारा वेतन कम नहीं है । हम शिकायत क्यों करें ?

शाम० : (क्रोध से) तो तुम्हारा यह ख्याल है, कि मैं जो दिन-रात कोल्हू के बैल के समान काम कर-करके पिसता रहता हूँ, उसका पुरस्कार केवल मेरा वेतन है ? यह ख्याल तुम्हारा हो सकता है, मेरा नहीं हो सकता ।

लाज० (शांति से) और क्या आपका यह ख्याल है, कि आप जो काम करते हैं, यह अपने भाई पर उपकार करते हैं ? पाँच सौ रुपया महीना कम नहीं होता ।

शाम० : तुम्हारे लिए बहुत होगा, मेरे लिए बिल्कुल कम है ।

लाज० : भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन से कहा है······

शाम० : रहने दो । मैं तुम्हारी गीता नहीं सुनना चाहता ।

लाज० : यह और भी बुरा ! (कुछ देर चुप रहने के बाद) अच्छा, एक बात पूछूँ ? क्या आपने उस आदमी को फिर बुलाया है ? या उसने फिर आने का वादा किया है ?

शाम० (सोचकर) हाँ, किया है ।

लाज० : मैं कहती हूँ, उससे न मिलिए ! वह आदमी बुरा है ।

शाम० : मगर बुरे आदमी से मिलने में क्या हानि है ?

लाज० : मैंने आज ही एक ही पुस्तक में पढ़ा है, कि बुराई आदमी को

पहले अजान के समान मिलती है। फिर हाथ बाँधकर नौकर की तरह उसके सामने खड़ी हो जाती है। फिर मित्र बनती है, और निकट आ जाती है। फिर मालिक बनती हैं, और आदमी के सर पर सवार हो जाती है, और उसको सदा के लिए अपना दास बना लेती है। आदमी उसके चंगुल में तड़पता है, और छूट नहीं सकता।

शाम० यही तो स्त्रियों में ऐब है। जो कुछ पढ़ती हैं, उसे दिल की गिरह में बाँध लेती हैं।

लाज० : तो क्या पुरुषों का यही गुण है, कि जो कुछ आज पढ़ते हैं, उसे कल भूल जाते हैं ?

शाम० : मैं तुम्हारे साथ तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। मैं जानता हूँ, मुझे क्या करना चाहिए।

लाज० : मगर इतना सोच लें, कि वह आदमी काले साँप से भी भयानक है। इसलिए उससे मिलना काले साँप के साथ खेलना है। कहिए, नहीं मिलूँगा।

शाम० : ज़रा सुन तो लो तुम मेरी बात……

लाज० : (हुक्म देते हुए) कहिए, नहीं मिलूँगा।

शाम० : (संकोच के साथ) अच्छा ! नहीं मिलूँगा, बाबा, नहीं मिलूँगा। और क्या हुक्म है ?

लाज० : (मुस्कराकर) और कोई हुक्म नहीं। अब बेशक आप अपनी जंजीर के साथ खेलें।

[टेलीफोन की घंटी बजती है, शामलाल जल्दी से उठकर दूसरे कमरे में चला जाता है। लाजवन्ती भी स्थिति पर सोचती हुई अंदर चली जाती है।]

●

पहला अंक : दूसरा दृश्य

• स्थान—शंकरदास का घर

समय—दोपहर

[शंकरदास और उसका मित्र दुर्गादास]

शंकरदास : मेरी बात का जवाब दो। तुम्हें रुपये की ज़रूरत है?

दुर्गादास : अरे भाई! तुम जरूरत कहते हो, मैं कहता हूँ, अगर मुझे रुपया न मिला, और मैंने रायबहादुर का ऋण न चुका दिया, तो शायद रायबहादुर मुझ पर नालिश कर दें, शायद मेरा मकान बिक जाए, शायद मैं कहीं मुँह दिखाने के योग्य भी न रहूँ। मैं इस समय विनाश के किनारे पर खड़ा हूँ—मुझे रुपये की सख्त जरूरत है।

शंकर० : तो मेरे साथ मिल जाओ, थोड़े दिनों में मालामाल हो जाओगे, और विनाश दूर चला जाएगा।

दुर्गा० : मगर मेरा मन कहता है, कि यह पाप है।

शंकर० : भाई मेरे! संसार में ग़रीबी सबसे बड़ा पाप है। इस पाप से बचने के लिए जितने भी पाप कर लो, सब पुण्य है। ग़रीब आदमी ज़रा-सी भूल करता है, तो समाज अपनी शक्तियाँ इकट्ठी करके उसके विरुद्ध खड़ा हो जाता है। अमीर आदमी घोर पाप भी कर ले, तो समाज उसे कुछ नहीं कहता। मानो पाप केवल ग़रीब करता है। बल्कि ग़रीब जो कुछ करता है, वह पाप है। बल्कि ग़रीबी संसार का जीता-जागता पाप है, हर आदमी को इस पाप से बचना चाहिए।

दुर्गा० : (उठकर और हाथ बाँधकर) अच्छा, नमस्कार!

शंकर० : (आश्चर्य से) मेरी युक्तियों का यही उत्तर है तुम्हारे पास?

दुर्गा० : मुझे रुपये की ज़रूरत है, पाप की ज़रूरत नहीं है। मैं पाप से डरता हूँ।

शंकर० : सोच लो। मेरी आँखें तो वह दिन सामने देख रही हैं, जब तुम्हारा नाश हो जाएगा, और दुनिया तुम पर हँसेगी।

दुर्गा० : किसी का नाश करने से यह कहीं अच्छा है कि आदमी अपना नाश कर ले।

[दुर्गादास नमस्कार कर के चला जाता है। शंकरदास टहलता है। इतने में शामलाल प्रवेश करता है। शंकरदास चौंकता है।]

शाम० : (मुस्कराकर) नमस्ते !

शंकर० : (अपने आपको सँभालते हुए) मैं आपकी तरफ़ जाने ही वाला था। (कुरसी की तरफ़ इशारा कर के) बैठिए।

शाम० : (बैठकर) देखो शंकरदास ! मैं मानता हूँ, कि तुम जो कुछ कहते हो, मेरे भले के लिए ही कहते हो। मगर फिर भी—मैंने निश्चय कर लिया है, कि मैं चुप रहूँ। मेरा कर्तव्य मेरे साथ, भाई साहब का अन्याय भाई साहब के साथ। जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा। धर्म का जीवन बड़ी चीज़ है।

शंकर० : (सिर हिलाकर) मैं समझ गया। यह आपका नहीं, आपकी स्त्री का निश्चय है।

शाम० : क्या मतलब ?

शंकर० : मतलब यह, कि ऐसी धर्म की बातें स्त्रियाँ ही किया करती हैं। उन्हीं के पास धर्म रहता है। वही धर्म को अपना खून पिला पिलाकर पालती हैं।

शाम० : यह तो ठीक है।

शंकर० : श्रीमान् जी ! स्त्री हँसने-खेलने की चीज़ है, मन बहलाने की चीज़ है, प्यार करने की चीज़ है। मगर वह सलाह-मशविरा करने की चीज़ नहीं है। जो उनकी राय पर चलता है, वह संसार में कभी उन्नति नहीं करता। स्त्री आदमी की उन्नति के मार्ग का रोड़ा है।

शाम० : मेरा ख्याल है, दुनिया में पुरुष का सबसे ज्यादा भला चाहनेवाली उसकी स्त्री ही है। जो स्त्री की राय पर चलता है, उसे कभी

कष्ट नहीं होता। जो स्त्री की राय पर नहीं चलता, वह नष्ट हो जाता है।

शंकर० : अगर आपकी स्त्री दया-धर्म की मूर्ति है, तो वह आपको कभी सलाह न देगी, कि आप ग़रीबों का लहू चूस-चूस कर मोटे होते जाएँ। क्या वह आपसे कहेगी कि आप किसी का घर नीलाम करा लें? या जो कुछ उसके पास है; छीन लें? अर्थात् अगर आप उसका कहना मानें, तो आपको अपनी साहूकारी लपेटकर परे रख देनी पड़ेगी। क्योंकि साहूकारी अर्थ की कसौटी पर कभी पूरी नहीं उतरती।

शाम० : (निरुत्तर होकर) यहाँ आकर मेरा मन फिर डावाँडोल होने लगा।

शंकर० : (उत्साहित होकर) अगर आपकी जगह मैं होता, तो कुछ करके दिखा देता। मगर आप महात्मा हैं। महात्मा संसार में कुछ नहीं कर सकते।

शाम० : अच्छा बताओ; अगर मेरी जगह तुम होते, तो तुम इस मामले में क्या करते?

शंकर० : मेरी बात छोड़िए! मैं तो अपने भाई के बेटे को कुछ दिनों के लिए गायब ही करा देता। श्रीमान् जी की आँखें खुल जातीं, होश ठिकाने आ जाते, और मेरे लिए मैदान साफ़ हो जाता। बोलिए, आप कर सकेंगे यह?

शाम० : मैं तो मर जाऊँ तब भी यह न कर सकूँ। मेरे लिए यह असम्भव है।

शंकर० : मुझे पहले ही मालूम था। क्योंकि इसके लिए साहस की जरूरत है, और साहस आपके पास है नहीं। आपके पास प्यार है, और प्यार आदमी की सबसे बड़ी निर्बलता है। क्या आपने दुनिया में किसी प्यार करनेवाले आदमी को ऊँचा उठते, बलवान् होते, शासन करते देखा है? (शामलाल शंकरदास की तरफ़ देखता है।) कम-से-कम मैंने प्यार को सदा रोते, गिड़गिड़ाते, शक्ति के हाथ बिकते और उसके पाँव की ठोकरें खाते देखा है। इसलिए अगर आप अपने मन में भाई का

प्यार पालना चाहते हैं, तो संसार में ठोकरें खाने के लिए तैयार हो जाइए। और अगर आप सुख, सुषमा और सम्मान का जीवन बिताना चाहते हैं, तो आपको संसार का झूठा प्यार त्यागना होगा। त्याग के बिना दुनिया में कोई भोग नहीं मिलता।

शाम० : (सोचकर) तुमने कहा है, अगर मेरी जगह तुम होते, तो रायबहादुर के बेटे को ग़ायब कर देते। मगर मैं चाहूँ तब भी यह काम नहीं कर सकता।

शंकर० : मगर आपको यह काम खुद करने की जरूरत ही क्या है? आप आज्ञा दे दें, काम हो जाएगा।

शाम० : मगर बच्चे को जरा भी हानि न पहुँचेगी?

शंकर० : मजाल है!

शाम० : और वह हर तरह मजे में रहेगा?

शंकर० : बराबर।

शाम० : और मैं जब चाहूँगा, वह मुझे वापस मिल जायगा?

शंकर० : क्यों नहीं?

शाम० : और यह भेद किसी को मालूम न होगा?

शंकर० : नहीं होगा।

शाम० : एक बात का ख्याल रहे! तुम्हारी जरा-सी बेपरवाही मेरी जान पर बन जाएगी।

शंकर० : मैं स्वयं मर सकता हूँ मगर मुझसे ऐसी बेपरवाही नहीं हो सकती। मेरा वचन पत्थर की लकीर है।

शाम० : (संकोच में) तो...मेरी तरफ़ से आज्ञा है। (जेब से नोट निकाल कर) एक हजार रुपया—बाक़ी फिर—मगर सावधान! यह बात कहीं बाहर न निकल जाए!

शंकर० : आप निश्चिन्त रहें। यह बात कभी न निकलेगी।

[दोनों बाहर चले जाते हैं।]

●

पहला अंक : तीसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का दफ्तर
समय—साँझ

[रायबहादुर हीरालाल अपने दफ्तर में एक शानदार मेज़ के सामने बैठे हैं। सामने एक कुरसी पर उसका ऋणी दुर्गादास बैठा उनकी मिन्नत-समाजत कर रहा है।]

दुर्गादास : रायबहादुर ! मैं बिल्कुल बरबाद हो जाऊँगा।

हीरालाल : (बेपरवाही से) मगर इसमें मेरा क्या दोष है ?

दुर्गा० : दोष तो मेरा ही है सरकार ! मगर फिर भी...

हीरा० : (पेंसिल उठाकर) एक साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया। दूसरा साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया ! तीसरा साल बीत गया, तुमने ब्याज न दिया। अब तुम ही बताओ, मैं क्या करूँ और कितनी देर चुप रहूँ ?

दुर्गा० : एक बार और अवसर दे दीजिए।

हीरा० : (घंटी बजाते हुए) बार-बार तो परमात्मा भी अवसर नहीं देता। (दरबान के आने पर) ज़रा शामलाल को यहाँ भेज दो।

[दरबान का प्रस्थान]

हीरा० : रुपये का काम रुपये से होता है, बातों से नहीं होता।

दुर्गा : बाप-दादा के समय का एक छोटा-सा झोंपड़ा है। मैं उसमें पैदा हुआ, उसी में पला, उसी में बड़ा हुआ। अब इस बुढ़ापे में कहाँ ठोकरें खाऊँगा ? छोटे-छोटे बच्चे हैं, झोंपड़ा छिन गया, तो वे कहाँ रहेंगे ? रोएँगे, तड़पेंगे, मारे-मारे फिरेंगे।

हीरा० : यह देखना मेरा काम नहीं। (शामलाल का प्रवेश) देखो, इसकी तरफ़ कितना रुपया निकलता है ?

[शामलाल खिड़की के पास जाकर मेज़ से रजिस्टर उठाता है, और उसे खोलकर देखता है।]

दुर्गा० : रायबहादुर ! मैं ग़रीब हूँ, मगर बेईमान नहीं हूँ। मैं सच कहता हूँ, मैं आपका पैसा चुका दूँगा। मुझे मौका दीजिए।

हीरा० : (शामलाल से) कितना रुपया है इसकी तरफ़ ?

[शामलाल रजिस्टर लिये आता है।]

शाम० : एक हजार सात सौ बाहर रुपया, ग्यारह आना।

हीरा० : (एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए) एक हजार सात सौ बाहर रुपया, ग्यारह आना ! अगर मैं नालिश न करूँ, तो यह रुपया मुझे कैसे मिल सकेगा ? बोलो।

दुर्गा० : मैं हर महीने की पहली तारीख को आकर पच्चीस रुपये दे जाया करूँगा और इसमें कभी नाग़ा न होगा।

हीरा० : पच्चीस रुपये महीना ? गोया अगर आज से ब्याज बिल्कुल बंद हो जाए, तो भी कहीं छः साल में जाकर तुम वह रुपया चुका सकोगे। (सिर हिलाकर) मुश्किल ! (शामलाल से) कागज वकील के पास भेज दो, और कोई रास्ता नहीं। मैं मजबूर हूँ !

शाम० : बहुत अच्छा।

हीरा० : (दुर्गादास से) मुझे अफ़सोस है, मैं कुछ नहीं कर सकता।

दुर्गा० : मेरी इज्जत आपके हाथ है। रायबहादुर ! आप मेरी रक्षा करें, भगवान् आपके जान-माल की रक्षा करेगा !

हीरा० : आदमी को रुपया-पैसा देना भगवान् का काम है, उसकी रक्षा करना आदमी का अपना काम है। और मेरा ख्याल है, मैं जानता हूँ, कि अपनी चीज़ों की कैसे रक्षा की जाती है।

[दुर्गादास निराश होकर उठता है, और चला जाता है। इतने में बाहर से आया के चिल्लाने की आवाज आती है। आया "दिलीप"

"दिलीप" कहकर चिल्ला रही है। यह आवाज़ पहले दूर से सुनाई देती है। इसके बाद निकट आती जाती है। हीरालाल घबराकर खड़ा हो जाता है। बूढ़ी आया गिरती-पड़ती प्रवेश करती है, और द्वार के साथ लगकर खड़ी हो जाती है। हीरालाल घबराकर उसके पास पहुँचता है।]

हीरा० : क्या बात है, आया ? क्या बात है ?

आया : (घबराए हुए स्वर में) दिलीप नहीं मिलता !

हीरा० : (चौंक कर) क्या कहा तूने ?

आया : (डरकर) दिलीप खो गया है !

हीरा० : (घबराकर) तू कहाँ थी ?

आया : (रुक-रुककर) मैं बगीचे में थी।

हीरा० : और वह कहाँ था ?

आया : वह भी वहीं गेंद के साथ खेल रहा था।

हीरा० : (अधीरता से) अच्छा !

आया : उसने गेंद झाड़ियों में फेंक दी। मैं लेने गई...

हीरा० : फिर ?

आया : लेकर लौटी; तो दिलीप का कहीं पता न था।

हीरा० : अपने कमरे में होगा—अपनी चाची के पास होगा—साथ की कोठी में होगा—दरबानों के पास होगा। जाकर देख, वह मिल जाएगा। इतना घबराने की क्या बात है ?

आया : (रोकर) कहीं भी नहीं है। मैं सब जगह देख आई हूँ, वह कहीं भी नहीं है।

हीरा० : (और भी घबराकर ऊँची आवाज़ से) सरजू ! रामू ! बंसी ! मूला ! (सब नौकर आकर सामने खड़े हो जाते हैं।) जाओ, जाकर दिलीप को ढूँढ़ो। (एक नौकर से) तुम कोठियों में देखो। (दूसरे से) तुम छावनी की तरफ़ जाओ। (तीसरे से) तुम शहर की तरफ़ ! (चौथे से) तुम स्टेशन की तरफ़।

[सब नौकर चले जाते हैं। हीरालाल कुछ देर टहलते हैं, फिर शाम-

लाल की तरफ़ देखते हैं ।]

हीरा० : (शामलाल से) और तुम यहाँ खड़े मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? जाओ, जाकर पुलिस को खबर दो ।

[हीरालाल जल्दी से चला जाता है । शामलाल अवाक् रह जाता है। वह कुछ देर वहीं खड़ा सोचता है । इसके बाद मेज़ के पास जाकर उसके दराज बंद करता है, और बाहर जाना चाहता है । इतने में लाजवन्ती आकर उसके सामने खड़ी हो जाती है । अब लाजवन्ती हाँफ रही है । शामलाल काँप रहा है ।]

लाज० : दिलीप खो गया ?

शाम० : (साहस बटोरकर) हाँ, तुमने भी सुन लिया !

लाज० : सुन लिया, और सुनकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने मुझे आकाश से धरती पर पटक दिया है, जैसे किसी ने मेरे मुँह पर कालिख पोत दी है, जैसे किसी ने मेरे दिल का गर्व छीन लिया है । मैं समझती थी, मैंने आपको बचा लिया है ! मगर अब मालूम होता है, ज़हर चढ़ चुका है । और मेरे पास इसका तोड़ नहीं ।

शाम० : लाज ! तुम क्या कह रही हो ?

लाज० : मैं यह कह रही हूँ, कि दिलीप के गुम हो जाने में आपका हाथ है, और मैं यह कह रही हूँ, कि आपने, साथ न जानेवाले धन के लोभ में, साथ जानेवाला धर्म बेच दिया । और आपने अपना मन काला कर लिया ।

शाम० : पहले मेरी बात सुनो...

लाज० : (ऐसे जैसे कोई किसी को आज्ञा दे रहा हो ।) जाओ ! दिलीप को लौटाकर लाओ । नहीं तो तुम्हारा भाई उसके वियोग में रो-रोकर पागल हो जायगा, तुम्हारी स्त्री तुम से घृणा करेगी और तुम्हारा दिल तुम्हें हर समय धिक्कारता रहेगा ।

शाम० : लाज, मैं सच कहता हूँ, इसमें मेरा हाथ नहीं है । मुझ पर विश्वास करो ।

लाज० : आप झूठ बोलते हैं। आपका मुँह कह रहा है, कि यह सब आपने किया। आपकी आँखें कहती हैं, कि इसमें आपका हाथ है।

शाम० : मैं कहता हूँ...

लाज० : (बात काटकर) मैं पूछती हूँ, क्या दिलीप जीता है? क्या वह हमारे पास लौट आएगा? क्या हमारे घर की शोभा, हमारे मन की शान्ति, हमारी निश्चिन्तता की नींद, हमें फिर से मिल जाएगी? बोलो! क्या तुम, जो मुझसे बहुत दूर चले गए मालूम होते हो, फिर मेरे निकट आ जाओगे?

शाम० : लाज! यह केवल तुम्हारा भ्रम है! मैं आदमी हूँ, मैं पशु नहीं हूँ।

लाज० : इस समय तुम पशु से भी बुरे हो।

शाम० : (क्रोध से) मैं कहता हूँ; क्या तुम जानती हो, तुम क्या कह रही हो? तुम मुझे गालियाँ दे रही हो।

लाज० : (सुना अनसुना करके) अगर तुम्हें अपने देवतुल्य भाई का ख्याल नहीं है, तो मेरा ही ख्याल करो! मैं भी दिलीप को अपने बच्चे के समान चाहती हूँ। दिलीप मेरा भी बच्चा है।

[लाजवन्ती भूमि पर गिर जाती है]

शाम० : (प्रभावित होकर) उठो लाज! मेरा विचार है, अभी तीर कमान से न निकला होगा। (तेजी से प्रस्थान)

•

दृश्य परिवर्तन

स्थान—जंगल

समय—रात

[शंकरदास मोटर में दिलीप को लिये जा रहा है। मोटर एक-दो सड़कों पर जाती दिखाई देती है, इसके बाद आँखों से ओझल हो जाती है।]

•

पहला अंक : चौथा दृश्य

स्थान—काशी का एक घाट

समय—साँझ से कुछ देर पहले

[काशी के घाट पर सूरदास इकतारे के साथ गा रहा है। यात्री आते हैं, सुनते हैं, पैसा दो पैसा देते हैं, चले जाते हैं। शंकरदास दिलीप को उठाए जाता है, और सूरदास के सामने से गुज़रकर दूसरी तरफ़ निकल जाता है। सूरदास अपने गाने में मग्न है, लोग सुनने में मग्न हैं। चारों तरफ़ आनन्द बरस रहा है।]

गीत

बाबा ! मन की आँखें खोल !

दुनिया क्या है एक तमाशा !
चार दिनों की झूठी आशा !
पल में तोला, पल में माशा !

ज्ञान-तराजू लेकर पगले, तोल सके तो तोल। बाबा...

झूठे हैं ये दुनिया वाले,
तन के उजले, मन के काले,
इनसे अपना, आप बचा ले,

रीत कहाँ की ? प्रीत कहाँ की ? कैसा प्रेम किलोल। बाबा...

[यात्री बातें करते हैं।]

एक यात्री : काशी में इसके जोड़ का गानेवाला दूसरा नहीं है। खूब गाता है।

दूसरा : गाता क्या है, गंगा के तीर पर दूसरी गंगा बहाता है।

तीसरा : न भैया ! यह गीत नहीं गाता, अज्ञान के अंधकार में सोई हुई आत्माओं को जगाकर प्रेम, प्रकाश और पवित्रता के शिखर

पर खड़ा कर देता है। यह गीत नहीं गाता आत्मा के जन्म-जन्म के बन्धन काट के रख देता है।

चौथा : इसके गीत सुनकर तो ऐसा मालूम होता है, जैसे हम कमल के फूलों, चाँद की किरणों, और स्वर्ग के सपनों के देश में पहुँच गए हैं। इसके गीत गीत नहीं हैं, अमृत की फुहारें हैं।

पहला : भई! ज़रा सुनो ना। बातें फिर कर लेना।

दूसरा : सुनो भाई सुनो।

[सूरदास गाता है, बाटलीवाला और जयकृष्ण आकर सुनते हैं।]

गीत

मतलब की सब दुनियादारी,
मतलब के सारे संसारी,
तेरा जग में को हितकारी?

तन मन का सब ज़ोर लगाकर, नाम हरि का बोल। बाबा...

बाटलीवाला : (धीरे से) क्या राय है?

जयकृष्ण : आप ठीक कहते थे। यह आदमी गाता नहीं है, समाँ बाँधता है, हवा बाँधता है, दिल बाँधता है!

बाटली० : अगर यह सूरदास हमारी कम्पनी में आ जाए, और हमारी कम्पनी में काम शुरू कर दे, तो कैसा रहे? ज़रा सोचो।

जयकृष्ण : (संदेहपूर्ण स्वर में) मगर मान जाएगा वह?

बाटली० : (आगे बढ़ते हुए) रुपए में बड़ी शक्ति है। (सूरदास के कंधे पर हाथ रख देता है, सूरदास चौंकता है।) भाई! खूब गाते हो। क्या बात है! जो सुनता है, झूमने लगता है। जो सुनता है, मस्त हो जाता है। जो सुनता है, अपना आपा भूल जाता है!

सूरदास : (अपना इकतारा भूमि पर रखकर) आप कौन हैं?

बाटली० : मैं कालिदास नाटक कम्पनी का मालिक हूँ।

जयकृष्ण : तुमने इनका नाम तो सुना होगा सूरदास! यह बहुत बड़े आदमी हैं।

सूरदास : ज़रूर होंगे भाई ! मगर मैं अंधा हूँ, मुझे ऐसे महापुरुषों से मिलने का औसर कब मिलता है ? मैं तो यहीं पड़ा रहता हूँ, अपनी ग़रीबी में ।

बाटली० : सूरदास ! परमात्मा ने तुम्हें इतना सुरीला गला, और ताल सुर का इतना अच्छा ज्ञान दिया है, तो फिर भिक्षा क्यों माँगते हो ? अगर मेरी कम्पनी में आ जाओ, तो चार दिनों में कहीं-से-कहीं जा पहुँचो ! चार दिनों में कायापलट हो जाए !

जयकृष्ण : तुम्हारी किस्मत जाग उठे सूरदास ! सैकड़ों कमाने लगो । हज़ारों कमाने लगो ।

सूरदास : मगर भाई ! मैं अंधा हूँ, और ग़रीब हूँ, और दुनियाँ में अकेला हूँ, मेरी दो आने में गुजर हो जाती है, मुझे हज़ारों की क्या दरकार है, और मैं नौकरी-चाकरी करके क्या करूँगा ? मैं यहीं खुश हूँ।

बाटली० : सूरदास ज़रा सोच लो । यहाँ भीख माँगते हो, वहाँ अपनी कमाई खाओगे ! (जयकृष्ण की ओर देखता है ।)

जयकृष्ण : (बाटलीवाला का अभिप्राय समझकर) कितना अंतर है ? जमीन से आसमान पर जा चढ़ोगे । भिक्षा माँगना मरने से भी बुरा है ।

सूरदास : मगर मैं तो भिक्षा नहीं माँगता, मेरे भाई !

बाटली० : तुम भिक्षा नहीं माँगते, तुम्हारे गीत भिक्षा माँगते हैं । यह और भी बुरी बात है । माँगना छोड़ो, चाकरी करो । चाकरी माँगने से हज़ार गुना अच्छी ।

सूरदास : तो चाकरी करके क्या हो जाएगा ? अभी यहाँ घाट पर बैठकर माँगता हूँ, फिर आपके नाटक में खड़ा होकर माँगूँगा । बात तो एक ही है ।

बाटली० : नहीं सूरदास ! वहाँ जो तुम्हारा गीत सुनना चाहेगा, उसे टिकट खरीदना होगा ।

सूरदास : अच्छा !

जयकृष्ण : टिकट खरीदने में और भिक्षा देने में आकाश पाताल का अन्तर है, सूरदास ! ज़रा सोचकर देखो ।

सूरदास : और जिसके पास टिकट खरीदने को दाम न हों वह क्या करे ?

बाटली० : वह अपने घर बैठे । उसे तुम्हारे गीत सुनने का क्या अधिकार है ? दुनिया में जिस तरह हर वस्तु की कीमत है, उसी तरह तुम्हारे गाने की भी क़ीमत है ।

सूरदास : मगर महराज ! सूरज की धूप और चाँद की चाँदनी और जल की बरखा की क्या क़ीमत है ? बाग में फूलों की डालियों पर बैठकर जो पखेरू मन को मोह लेनेवाले गीत गाते रहते हैं, उसकी क्या क़ीमत है ? पौन जीवन देता है, उसकी क्या क़ीमत है ।

बाटली० : तुम तो बहुत दूर चले गए सूरदास ! मेरा मतलब यह था, कि तुम रागी हो, रागी बनो । तुम्हें भक्त बनकर क्या मिलेगा ?

जयकृष्ण : जरा सोचकर जवाब दो, तुम्हें भक्त बनकर क्या मिलेगा ?

सूरदास : (मुस्कराकर) रागी बनकर रुपया मिलेगा, भक्त बनकर भगवान् मिलेगा । और बाबा; भगवान् बड़ी चीज है । भगवान् के सामने सब तुच्छ है ।

बाटली० : (निराश होकर) तो यह कहो कि तुम नौकरी नहीं करना चाहते !

सूरदास : भैया ! जिसको ईश्वर घर बैठे भेज दे, उसे इस असार संसार के मोह-माया में फँसने की क्या दरकार है ? मैं यहाँ घाट पर अच्छा हूँ । मुझे नौकरी की दरकार नहीं ।

जयकृष्ण : यह तुम्हारी मूर्खता भी है, बदनसीबी भी है ।

बाटली० : (जाते-जाते) यह आँखों का भी अंधा है, दिल का भी अंधा है । घर आई लक्ष्मी को ठुकराता है, किसी दिन रोएगा ।

सूरदास : जगत में हर आदमी जात्री है, जिसके पीछे लोभ तृसना

का चोर लगा हुआ है। स्याना वही है, जो इस चोर से बचे और अपनी जात्रा को खोटा न करे।

[खाटलीवाला और जयकृष्ण दोनों चले आते हैं। सूरदास मुस्करा कर अपना इकतारा सँभालता है और फिर से गाने लगता है।

गीत

तेरी गठरी में लागा चोर, मुसाफिर जाग जरा, जाग जरा।
आज ज़रा सा फ़ितना है यह,
तू कहता है कितना है यह,
दो दिन में यह बढ़कर होगा, मुँहफट और मुँहजोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।
नींद में माल गँवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,
फिर पीछे कछु नाहिं बनेगा, लाख मचावे शोर।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा।

[लोग सुनते हैं, पैसे फेंकते हैं, चले जाते हैं। इसके बाद कई साधु आकर सूरदास के पास बैठ जाते हैं। एक साधु सूरदास के हाथ में नारियल देता है। सूरदास इकतारा रख देता है। और नारियल पीने लगता है। साथ ही साथ बातें भी होने लगती हैं।]

एक साधु : सूरदासजी। हमें तो आज कुछ भी न मिला।

दूसरा : अरे महाराज! मिले कैसे? लोगों में दया-धरम का सौक और परमेश्वर का खौप नहीं रहा।

तीसरा : पहले इसी कासीपुरी में मैं हर रोज साँझ बखत दस-दस रुपये लेकर उठता था। अब दस पैसे भी नहीं मिलते। ज़माना ही बदल गया। लोग अरिए बन गए।

चौथा : यही तो कलिजुग के लच्छन हैं। गृहस्थी ऐस करते हैं, साधु-महात्मा भूखे मरते हैं। क्यों सूरदास? साधु महात्माओं से तो गृहस्थी ही अच्छे।

सूरदास : (चिलम दूसरे को देकर) अरे भाई! गृहस्थी फिकर में पैदा होते हैं, फिकर में पलते हैं, फिकर में मर जाते हैं। तुम्हें क्या फिकर है? तुम उन आसरम में जाकर चार दिन न रह सको। यह ज़िन्दगी बड़ी अच्छी है महात्माजी!

पहला : नहीं महाराज! यह ज़िन्दगी नहीं, जिन्दगी का मज़ाक है। यह जिन्दगी का रोना है।

सूरदास : (क्रोध से) तो जाओ, जाकर किसी रांड़ से सादी कर लो और ऐस मनाओ। जब तुम्हारे मन की तृसना नहीं मिटी, और लोभ नहीं गया, तो गेरुए बस्तर पहनना किस काम का? इससे चोरी भली। इससे डाका भला। इससे सब कुछ भला।

पहला : सूरदास! तुम तो गुस्से हो गए। परन्तु बताओ, जब दो जून खाने को भी न मिले, तो क्या करें? पेट पर पत्थर तो बाँधा नहीं जाता हमसे। पेट हमसे माँगता है। हम किससे माँगें?

सूरदास : परमेसर से माँगो। परमेसर देगा। मगर तुम तो परमेसर से माँगते ही नहीं, आदमी से माँगते हो।

दूसरा : तुम भी लोगों के सामने गाते हो, परमेसर के सामने क्यों नहीं गाते? खाने को मिल जाता है, तो चले हैं उपदेश बघारने! भूखे मरो, तो चार दिनों में होस ठिकाने आ जाएँ। चार दिन में यह सब बातें भूल जाओ। पेट भरता है तो ज्ञान सूझता है।

सूरदास : भाई! हम तो परमेसर ही के सामने गाते हैं। सुनने को जो कोई सुन जाए अपने राम को क्या? लो यह पैसे आपस में बाँट लो। (साधु पैसे बाँटते हैं।) ठीक-ठीक बाँटना, और सब को बराबर देना।

तीसरा : सूरदास! तुमने कुछ कल के लिए भी रखा या नहीं?

सूरदास : भाई! जिस मालिक ने आज दिया है, वह कल भी देगा। साधु के लिए कल की फिकर करना बुरा, लोभ बुरा, बचाकर रखना बुरा।

[एक साधुनी का भागते-भागते प्रवेश]

साधुनी : सूरदास! ओ सूरदास!!



सूरदास : आओ माई बैठो !

साधुनी : नहीं सूरदास ! बैठने की बेला नहीं । आज वह एक पेड़ तले किसी का बच्चा रह गया है । बहुत खोज की है, माँ-बाँप का कुछ पता ही नहीं लगता । परमेश्वर जाने, कहाँ चले गए ? बताओ अब क्या करें ?

सूरदास : (अंधी आँखें झपकाकर) वह बच्चा तो रो रहा होगा ।

साधुनी : रोता तो ऐसे है, कि तुम से क्या कहूँ ? किसी से चुप नहीं होता । किसी के पास नहीं जाता । चारों तरफ़ देखता है, और मुँह फुलाकर रोता है ।

सूरदास : मेरे पास आ जाए, तो एक छिन में चुप हो जाए । क्या मजाल, जो ज़रा भी रो जाए । क्या मजाल, जो चूँ भी कर जाए ।

[एक साधु दिलीप को लिए आता है । दिलीप ज़ोर-ज़ोर से रो रहा है, और हाथ से निकला जाता है ।]

साधु : तो तुम ही जतन कर देखो सूरदास ! हम में तो यह बूता नहीं । सारे जतन करके हार गए । लो पकड़ो इसे ।

सूरदास : लाओ भैया ! मैं चुप करा दूँ इसे ।

[सूरदास दिलीप को लेकर कन्धे से लगा लेता है, और उसके सिर के बालों में प्यार से अँगुलियाँ फेरने लगता है । दिलीप पहले रोता है, फिर चुप हो जाता है, और अपना सिर सूरदास के कन्धे पर रख देता है । सारे लोग हैरान होते हैं । सूरदास खुश होता है ।]

सूरदास : अब बोलो, चुप हुआ या नहीं ? कहते थे, किसी की सुनता ही नहीं । अरे बाबा ! प्यार की पुकार तो पशु-पत्ती भी सुनते हैं, ढोर डंगर भी सुनते हैं । यह तो फिर भी आदमी का बच्चा है । लो अब जाकर इसके माँ-बाप को खोज लाओ । परेसान हो रहे होंगे । और इसकी माँ तो मरी जाती होगी ।

साधुनी : सूरदास ! बहुत ढूँढ़ा है, कहीं पता नहीं लगता । देखो, तुम एक काम करो । इसे अपने घर ले जाओ । जब इसके माँ-बाप आएँगे, हम तुम्हारे पास भेज देंगे । यह बच्चा तुमसे सँभलेगा, और

किसी से न सँभलेगा ।

सूरदास : (घबराकर) मगर......

एक : अरे सूरदास, तू भी घबराएगा, तो इसे और कौन सँभालेगा ?

दूसरा : सूरदास ! यह काम तो तुम्हें करना ही होगा !

सूरदास : (विवशता से) अच्छा भैया ! जैसी तुम्हारी मरजी, वैसी मेरी मरजी । और क्या ?

[सूरदास दिलीप को लेकर चला जाता है । इतने में पुलिस के आदमी घायल शंकरदास को उठाए लाते हैं, और शहर की तरफ़ चले जाते हैं । दो चार आदमी पीछे रह जाते हैं, और बातें करने लगते हैं ।]

एक : (दूसरे आदमी से) क्यों भाई ! तुम कुछ बता सकते हो ? यह क्या हुआ है ?

दूसरा : अरे भैया ! एक मुटरिया एक पेड़ से टकरा गई है, और क्या हुआ ?

तीसरा : यह आदमी मर गया है, या अभी जीता है ?

दूसरा : (सिर हिलाकर) ना भाई ? मर गया । और अगर नहीं मरा, तो अस्पताल में जाकर मर जाएगा । बचना मुस्किल !

चौथा : कोई परदेसी मालूम होता है ।

दूसरा—और यह भी मालूम होता है कि अमीर है । जेबसे एक हजार के नोट भी निकले हैं ।

पहला : गाड़ी तो चूर-चूर हो गई होगी ?

दूसरा : एकदम ।

तीसरा : जाने इसकी आँखें कहाँ थीं ?

पहला : भाई मेरे ! जब बुरे दिन आते हैं, आँखें पहले बंद हो जाती हैं । आदमी देखता हुआ भी नहीं देखता । आँखें गईं, और आदमी मरा ।

[सब का प्रस्थान]



पहला अंक : पाँचवाँ दृश्य

स्थान—काशी के बाहर ग़रीबों के झोंपड़े

समय—रात

[एक जगह म्युनिसिपल कमेटी के लैम्प के नीचे कुछ ग़रीब लोग बैठे ताश खेल रहे हैं। दूसरी जगह एक आदमी बैठा हुक्का पी रहा है। कुछ परे एक बकरी बँधी है। एक स्त्री पानी का घड़ा लिये जा रही है। इतने में सूरदास दिलीप को उठाए आता है, और बाहर से पुकारता है]

सूरदास : (ऊँची आवाज से) कल्लो की माँ ! ओ कल्लो की माँ !! कहाँ मर गई तू ?

[कोई जवाब नहीं देता !]

सूरदास : (फिर आवाज देता है।) ओ कल्लो की माँ !

कल्लो की माँ : (अपने झोंपड़े से जवाब देती है।) क्या है सूरदास ? तुम्हारा खाना बना रखा है जाकर खा लो ! मुझे इस बखत क्या कहते हो ? मुझे काम है अपना।

सूरदास : खाने की बात नहीं, कल्लो की माँ ! ज़रा बाहर आओ ? बड़ा जरूरी काम है।

[कल्लो की माँ झुँझलाई हुई झोंपड़े से बाहर निकलती है और शिकायत के तौर पर कहती है]

कल्लो की माँ : अब तुम बहुत तंग करने लगे सूरदास ! कहो, क्या कहते हो ? (एकाएक बच्चे को देखकर) अरे सूरदास ! यह बच्चा किसका है ? और तुम इसे कहाँ से उठा लाए हो ?

सूरदास : उठा नहीं लाया कल्लो की माँ ! गंगा के घाट पर पड़ा था। पता नहीं, इसके माँ-बाप कहाँ चले गये ? मैंने सोचा, चलो अपने

घर ले चलें। रात की बेला घाट पर ठंडी होती है, साँड़ होते हैं, सियार होते हैं। यह मासूम अकेला वहाँ कैसे रहता ?

कल्लो की माँ : मगर तुम क्यों उठा लाए ? जाने, कौन है, कौन नहीं है ? मुफ़्त की बला।

सूरदास : कोई भी हो, परमेसर का जीव तो है। और फिर एक ही रात की बात है। देखना कल भोर होते ही इसके माँ-बाप आ जाएँगे। ऐसे ज़रा से बच्चे को खोकर क्या किसी माँ को, या बाप को नींद आ सकती है ? तड़प रहे होंगे! बच्चे का मोह बुरा।

कल्लो० : अच्छा बाबा ! जो तुम्हारी खुसी, (दिलीप को देखकर) मगर बच्चा है सुन्दर ! कैसी बड़ी-बड़ी आँख है। गोरा-गोरा रंग है ! मुटर-मुटर ताकता है। (बच्चे से) आ लल्ला, मेरे पास आ जा।
[बच्चे को लेना चाहती है, मगर सूरदास नहीं देता।]

सूरदास : कल्लो की माँ! यह हमारा एक रात का पाहुना है। अपने घर में, राम जाने, इसकी खिदमत करनेवाले कितने चाकर होंगे। राम जाने, वहाँ इसकी कितनी खुशामदें होती होंगी ? जाकर इसके लिए थोड़ा-सा दूध ले आओ। यह भी क्या याद करेगा, कि किसी अंधे फकीर के घर गया था ! जाओ ले आओ।

[सूरदास जेब से पैसे निकालता है]

कल्लो० : पर रात बहुत गुजर गई है। इस बखत दूध मिलेगा भी ? मुझे तो सक है।

सूरदास : जरूर मिलेगा कल्लो की माँ ? जरूर मिलेगा (पैसे देकर) तुम जाओ तो सही ! (दिलीप अपना कवच उतार कर फेंक देता है।) यह क्या ? कल्लो की माँ, इसने क्या फेंका है ? ज़रा देखना तो।

कल्लो० : (कवच उठाकर) कवच है सूरदास ! और सोने का है—(सूरदास को देखकर) सँभालकर रखो, यह फिर फेंक देगा।

सूरदास : (हाथ फैलाकर) ला, दे दे मुझे।

[सूरदास कवच ले लेता है। कल्लो की माँ चली जाती है। सूरदास दिलीप के सिर पर हाथ फेरता है, और उसे लेकर अपनी झोंपड़ी में चला जाता है। आस-पास के लोग देखते हैं और हैरान होते हैं। फिर अपने काम में लग जाते हैं।]

पहला अंक : छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—रात

[रायबहादुर हीरालाल बीमार पड़ा है। सामने डाक्टर साहब बैठे हैं। एक ओर शामलाल हैं। ज़रा परे हटकर लाजवन्ती घूँघट काढ़े खड़ी है। हीरालाल कराह रहा है—]

रायबहादुर : (पीड़ा की व्याकुलता से) शामलाल! ओ-ओ-ओ शामलाल—मेरा हाल बुरा है। (कराहता है।)

डाक्टर : घबराइए नहीं। (शामलाल से) वह छोटी शीशी उठा दीजिये मुझे।

[शामलाल शीशी देता है, डाक्टर दवा निकालता है। हीरालाल करवट बदलकर उसकी तरफ़ देखता है, कहता है—]

रायबहादुर : डाक्टर साहब! मेरे रोग की औषधि दिलीप है। उसे ला दीजिए, मैं ठीक हो जाऊँगा। नहीं तो (सिर हिलाकर) मेरा बुरा हाल होगा शामलाल!

शाम० : (पास जाकर) भैया! धीरज धरो! पुलिस खोज कर रही है। आशा है, वह मिल जाएगा।

राय० : सभी समाचार-पत्रों में विज्ञापन दे दो कि जो मेरे दिलीप का समाचार लाएगा, उसे दस हजार रुपया इनाम दिया जाएगा। बल्कि पन्द्रह हजार, बल्कि बीस हजार।

शाम० : भैया! मैंने विज्ञापन कल ही भेज दिया था, आज छप गया है।

राय० : (शांत होकर) अच्छा !

[डाक्टर दवा पिलाना चाहता है। रायबहादुर उसे परे हटा देता है।]

राय० : क्या यह दवा पीने से मेरा दिलीप मेरे सामने आकर खड़ा हो जायगा ? अगर नहीं तो...डाक्टर साहब ! यह मन का रोग है, तन का नहीं। इसलिए...

[हीरालाल लेट जाता है।]

लाज० : (शामलाल को एक तरफ़ ले जाकर) शंकरदास का कुछ पता लगा या नहीं ?

शाम० : (सिर झुकाकर) नहीं।

लाज० : यह भी पता नहीं लगा कि वह कहाँ गया है ?

शाम० : (उसी तरह सिर झुकाए हुए) अभी कुछ पता नहीं लगा।

लाज० : इनका हाल तो बहुत खराब है। क्या करें ?

राय० : (आह भरकर) भगवान ! मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था, जो तूने मेरा दिलीप मुझसे छीन लिया ! तू मेरा सब कुछ ले ले, सिर्फ मेरा दिलीप लौटा दे। मैं और कुछ नहीं चाहता। कुछ नहीं चाहता—न नाम, न दौलत, न शान। मुझे सिर्फ मेरा दिलीप लौटा दे।

(परदा गिरता है।)

पहला अंक : सातवाँ दृश्य

स्थान—काशी का एक बाज़ार

समय—दुपहर

[एक बन्द दुकान के बरामदे में कुछ साधु बैठे हैं, और बातें कर रहे हैं, और नारियल पी रहे हैं।]

एक साधू : कितना बदल गया यह आदमी ?

दूसरा : एकदम बदल गया। अब यह सूरा वह पहलेवाला सूरा कहाँ ?

पहला : पहले जो कुछ पाता था, बाँट देता था। अब किसी को पैसा भी नहीं देता। सब समेटकर घर ले जाता है।

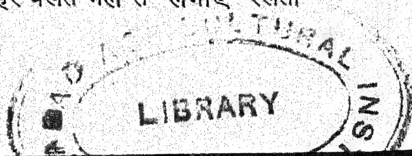
तीसरा : और ज्यादा माँगता है। कहता है, मेरा खर्च बढ़ गया है। कोई पूछे, जरा से बच्चे का खर्च ही क्या ! दो पैसे का भात और दो पैसे का दूध बहुत है।

चौथा : मगर वह उसे दूध और भात खिलाए तब न ! उस दिन मैं गया था; देखा, तो बैठा दही और जलेबी खिला रहा था। मैंने समझाया, तो कहने लगा, अब इसको क्या भूखों मार दूँ ?

पहला : इस बच्चे का सुभाव बिगड़ गया, तो सूरा बाद में पछताएगा, और रोएगा।

दूसरा—और अपना बच्चा भी तो हो। पराए बच्चे की इतनी खातरतवाजो कौन करता है।

तीसरा : वह तो कहता है, अब यह मेरा ही बच्चा है। उसे 'दीपक' 'दीपक' कहकर बुलाता है। हर बखत गले से लगाए रखता



है। जरा रोने लगता है, तो परेसान हो जाता है।

चौथा : (हँसकर) तो नामकरण-संस्कार भी हो गया। वाह !

पहला : (सूरदास को आते देखकर) लो देखो, वही आ रहा है। जरा पूछूँ, वह सरधा-भक्ति कहाँ चली गई ?

दूसरा : अजी ! अपने-राम को क्या ? मोहमाया में फँसता है, फँसने दो। अपने आप भोगेगा। घरबार छोड़ दिया, प्यार न छोड़ा।

[सूरदास का दिलीप को उठाए हुए प्रवेश]

तीसरा : क्यों सूरे ! क्या हाल है तेरा ?

सूरदास : भाई ! हाल क्या होगा ? दुनिया को छोड़ बैठा था, परमेसर ने फिर माया में फँसा दिया। इसके माँ-बाप आ जाते, तो मेरा गला छूट जाता।

पहला : यह सब कहने की बातें हैं सूरे ! तुम आप माया में फँस रहे हो। चाहो, तो आज बन्धन तोड़ दो। कौन रोकता है तुम्हें ?

सूरदास : यही तो असम्भव है महाराज ! आखिर इस अजान असहाय बालक को कहाँ पटकूँ ? बताओ !

दूसरा : मैं बताऊँ सूरे ! इसे किसी अनाथ-आश्रम में दाखल करा दे, और परमेसर का भजन कर। (सूरदास निरुत्तर हो जाता है।) अब बोलता क्यों नहीं ? इसका जवाब दे ?

सूरदास : अनाथ-आसरम में इसका ख्याल कौन रखेगा ?

तीसरा : (दूसरे से) सुन लिया महाराज ! अब यह सूरदास वह सूरदास नहीं है। सरीर वही है, आत्मा बदल गयी है।

सूरदास : यह बात तो तुमने सच कही ! पहले मैं समझता था, घाट पर बैठ कर दो पद गा लेने से ही परमेसर खुश हो जाता है। अब मालूम हुआ, कि उसकी भक्ति यह है कि हम उसके जीवों की सेवा करें। पहले मैं केवल अपना आप पालता था, अब किसी दूसरे की भी पालना करता हूँ। और मेरा आत्माराम यह कहता है कि सेवा-मार्ग, भक्ति-मार्ग से भी ऊँचा है।

चौथा : वह तुम्हारी सम्मति होगी, अपने राम की तो यह सम्मति नहीं, कि किसी के लल्ला को जलेबियाँ खिलाना परमेसर के भजन से भी अच्छा है। अगर ऐसा होता, तो बेद-सासतरों में धरम का उपदेस न होता, बच्चों को जलेबियाँ खिलाने का उपदेस होता।

सूरदास : (मुस्कराकर) अपना-अपना ख्याल है भाई !

पहला : (चौथे से) अरे यार ! छोड़ो, इन बातों में क्या धरा है ? सूरे ! इस लू में कहाँ जा रहे हो ?

सूरदास : हलवाई से थोड़ा हलुवा माँगने जा रहा हूँ।

दूसरा : तुम तो कहते थे, हम किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते। हमें भगवान् देता है। अब भगवान् से क्यों नहीं माँगते ?

सूरदास : (दिलीप के सिर पर हाथ फेरकर) बाबा ! मैं अपने लिए नहीं माँगता, इस बच्चे के लिए माँगता हूँ। यह रोता है, तो मेरे मन में कुछ होने लगता है।

तीसरा : अभी आगे-आगे देखना होता है क्या ?

सूरदास : अच्छा भाई ! भगवान् जो दिखाएगा, देख लूँगा।

[एक तरफ़ सूरदास चला जाता है, दूसरी तरफ साधु चले जाते हैं।]

पहला अंक : आठवाँ दृश्य

स्थान—लाहौर में रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—प्रातःकाल

[रायबहादुर हीरालाल अपने पुत्र के बड़े तैल-चित्र के सामने बैठा उसकी ओर सजल आँखों से देख रहा है। कुछ दूर शामलाल उदास खड़ा है। दोनों की दाढ़ियों के बाल बढ़ गए हैं, दोनों बीमार-से मालूम होते हैं। मकान की शोभा भी फ़ीकी मालूम होती है। हीरालाल शामलाल की ओर देखता है, और कहता है।]

हीरालाल : (ठंडी आह भरकर) पूरा एक साल बीत गया, और दिलीप का अभी तक कोई पता नहीं मिला।

शामलाल : मगर मुझे अब भी आशा है, कि दिलीप मिल जाएगा।

हीरा० : (हवा में देखते हुए) यह सब मेरा ही दोष है। मैं अन्धा हो गया था। मैं समझता था, संसार में रुपया-पैसा ही सब कुछ है। अब मालूम हुआ, रुपया-पैसा सब कुछ नहीं है। मैंने उस दिन कहा था, कि मैं अपनी चीजों की रक्षा करना जानता हूँ। उसी दिन मेरे चौकीदार मेरे दरवाजे पर खड़े पहरा देते रह गए, और बेटा गुम हो गया। मानो भगवान् ने मेरे मुँह पर थप्पड़ मारकर कहा—मूर्ख, देख! तू कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता हूँ, मैं करता हूँ। (जरा देर के बाद) मेरी आँखें देर में खुली हैं।

शाम० : (निकट आकर) मगर अब इस तरह ठण्ठी आहें भरने से क्या होगा? कोशिश करनी चाहिए, और वह हम कर रहे हैं।

भगवान् हमारा संकट टालेगा।

हीरा० : (सुना अनसुना करके) मेरा भी यही ख्याल है, कि दिलीप कहीं-न-कहीं जीता है। भगवान् ने देखा, कि यह आदमी धन-दौलत का लोभी है, इसे जीव की परवाह नहीं! उसने मेरा बच्चा मुझसे छीन लिया, और किसी ऐसे प्राणी के हवाले कर दिया, जो शायद धन-दौलत की परवा नहीं करता, आदमी की परवा करता है। (शामलाल की तरफ मुड़कर) शामलाल!

शाम० : (सिर झुकाकर) इसमें मेरा भी दोष है!

हीरा० : (आश्चर्य से) तुम्हारा?

शाम० : मैंने भी धन का ख्याल किया, बच्चे का ख्याल न किया। अगर मैं ही बच्चे का ख्याल करता, तो हमें यह काला दिन देखना नसीब न होता। इसमें मेरा भी दोष है। मेरी भी आँखें बंद हो गई थीं।

हीरा० : तुम सच कहते हो, तुम्हें भी रुपए का रोग लग गया था। (शामलाल का रंग उड़ जाता है, जैसे उसका रहस्य खुल जाने वाला है।) तुमको भी हर समय यही धुन लगी रहती थी कि हम अधिक-से-अधिक रुपया कमा लें। इसके लिए न मैंने पाप-पुण्य का ख्याल किया, न तुमने। परिणाम यह है, कि हमने धन कमा लिया, मगर मन की प्रसन्नता गँवा बैठे। अब मैं भी रो रहा हूँ, तुम भी रो रहे हो।

शाम : भैया......

हीरा० : (चाबियाँ देते हुए) आलमारी से मेरा दान-पत्र निकालो। मैं उसे बदलना चाहता हूँ।

शाम० : इस समय क्या जरूरत है; फिर किसी समय सही।

हीरा० : जो समय चला जाता है, वह फिर कभी नहीं आता।

[शामलाल चाबियाँ लेकर चला जाता है, हीरालाल इधर-उधर टहलता है। इतने में शामलाल अन्दर से पूछता है—]

शाम० : कहाँ है वह दानपत्र?

हीरा० : (ऊँची आवाज से) दूसरे खाने में बाईं तरफ रखा है।

[हीरालाल फिर टहलता है। इतने में शामलाल फिर आवेग, आश्चर्य और आनन्द से दान-पत्र पढ़ते-पढ़ते प्रवेश करता है।]

शाम० : यह क्या ? चौथा भाग मेरे नाम ! आपने चौथा भाग मेरे नाम किया था ?

हीरा० : तुमने मेरी बड़ी सेवा की है, इसलिए मैंने वसीयत कर दी थी, कि मेरे बाद मेरी जायदाद के तीन भाग मेरे बेटे को मिलें। चौथा भाग तुम्हें मिले। मगर अब मैं इसे बदलना चाहता हूँ, मैंने तुम्हारा जो रूप अब देखा है वह इससे पहले न देखा था। अब मेरी आँखें खुल गई हैं। अब मुझे होश आ गया है।

शाम० : डरकर) मेरे भैया......

ह .० (बात काटकर) मैं पहले समझता था, तुम मेरे भाई हो, मगर इस घटना ने सिद्ध कर दिया है, कि तुम मेरे भाई नहीं हो। [शामलाल गिरने से बचने के लिए कुरसी थाम लेता है। हीरालाल अपना वक्तव्य जारी रखता है।] क्या कोई अपने भाई के साथ ऐसा बर्ताव कर सकता है, जैसा तुमने मेरे साथ किया ?

शाम० : भैया ! इसका क्या प्रमाण है कि......

हीरा० : प्रमाण माँगते हो ? जरा अपने मुँह का उड़ा हुआ रंग देखो। अपनी शोभाहीन मरी हुई आँखें देखो। अपने काँपते हुए हाथ-पाँव देखो। और इतना ही नहीं, अपने गले में अटकते हुए, जबान पर फिसलते हुए, होठों पर जमते हुए, शब्द देखो और फिर बताओ, क्या यह प्रमाण काफ़ी नहीं है।

[शामलाल कोई उत्तर नहीं देता। वह उसी तरह अवाक् खड़ा रहता है, जैसे उसे काठ मार दिया हो। हीरालाल अपनी रौ में कहता चला जाता है—]

हीरा० : ये सारी बातें साफ़ कह रही हैं, कि दिलीप के गुम होने का जितना मुझे दुःख है, उससे अधिक तुम्हें है। कोई भाई अपने भाई

के दुःख को इस तरह अनुभव कर सकता है, यह मेरी धारणा से बाहर था। इसलिए मैं पहले तुम्हें भाई समझता था, अब भाई नहीं समझता —भाई का शब्द तुम्हारे लिए बहुत असुन्दर है। तुम भाई नहीं हो, भाई के रूप में देवता हो।

शाम० : (रोते हुए) नहीं, भैया नहीं ! आपने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। मैं देवता नहीं हूँ।

हीरा० : अब मैं अपना दान-पत्र बदलना चाहता हूँ। अब तुम्हें तीसरा भाग मिलेगा। बाकी दिलीप को मिलेगा। और अगर दिलीप न मिला, तो उसका भाग गरीबों को बाँट दिया जाएगा।

शाम० : मेरा मन अब भी यही कहता है, कि हमारा दिलीप हमें मिल जाएगा।

हीरा० : अच्छा ! तुम मेरे लिए प्रार्थना करो। मैं पापी हूँ, भगवान् मेरी नहीं सुनता। तुम शुद्धात्मा हो, शायद वह तुम्हारी सुन ले और हमारी तकदीर सीधी हो जाए।

[हीरालाल बाहर चला जाता है।]

शाम० : भगवान् ! यह तुम मुझे कैसा भयंकर दंड दे रहे हो ? एक घड़ी में मारते हो, दूसरी घड़ी में जिला लेते हो। यह मर-मर कर जीना बड़ा भारी दंड है।

[बाहर किसी के गाने का आवाज आती है। शामलाल
कान लगाकर सुनता है।]

गीत

क्यों रोता है मन, सोच तनिक,
मन सोच तनिक, क्यों रोता है ?
जो किसमत में है, मिलता है ,
जो होना है, सो होता है।
　　जिसने अंधेर किया जग में,
　　उसको जग में सन्तोष कहाँ ?

क्यों अमृत की आशा उनको ,
जो विष की खेती बोता है ।
क्यों रोता है मन, सोच तनिक—

[शामलाल गाना सुनते चला जाता है । परदा उठता है, दुर्गादास साधुओं के वेष में गाते हुए और हीरालाल सुनते हुए दिखाई देते हैं । शामलाल भी आकर खड़ा हो जाता है, और सुनने लगता है ।]

गीत

तू ने दुखियों के दिल तोड़े ,
कोई तेरा भी दिल तोड़ेगा ।
यह पाप-पुण्य का सौदा है ,
यह दुनिया का समझौता है ।
क्यों रोता है मन, सोच तनिक—

हीरा० : शामलाल ! इस आदमी ने सच कहा है, इसे कुछ इनाम दो ।

दुर्गा० : जब देने का समय था, उस समय तुमने कुछ नहीं दिया, तो अब क्या दोगे ? अब वह समय बीत गया । अब मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

शाम० : तुम कौन हो ? मालूम होता है मैंने तुम्हें कहीं देखा है । मालूम होता है, मैंने तुम्हारी आवाज सुनी है । मगर याद नहीं आता, कि कब और कहाँ ?

हीरा० : क्या तुम कहीं...

दुर्गा० : (हँसकर) हाँ मैं दुर्गादास हूँ ।

शाम० : (चौंककर) दुर्गादास ? कौन दुर्गादास ? क्या...क्या...

दुर्गा० : हाँ वही अभागा ! मैं तुम्हारे सामने गिड़गिड़ाया, तुमने परवाह न की । मैंने तुमसे दया की भीख माँगी, तुमने मेरी पुकार न सुनी । मेरे पास एक झोंपड़ा था, वह भी तुमने छीन लिया और मुझे, और मेरी स्त्री को और मेरे बच्चों को बाहर निकाल दिया । स्त्री बीमार थी, वह

सरदी की मार न सह सकी, और मर गई। बच्चे छोटे थे, मैं उनको पाल न सका वे भी मर गए। अब मैं दुनिया में अकेला हूँ। अब मुझे किसी की दया नहीं चाहिए। अब मैं किसी से दया नहीं माँगता।

हीरा० : दुर्गादास! मुझे अफसोस है।

दुर्गा० : मगर अब तुम्हारा यह अफ़सोस भी मेरे किसी काम का नहीं है। तुम्हारा अफ़सोस मेरी स्त्री को ज़िन्दा नहीं कर सकता, तुम्हारा अफ़सोस मेरे बच्चों को वापस नहीं ला सकता।

हीरा० : शामलाल, इसका घर इसे लौटा दो। मुझे इसके घर की जरूरत नहीं।

शाम : आप ठीक कहते हैं।

दुर्गा० : अब मेरे पास केवल दो वस्तुएँ हैं एक मेरी देह और दूसरी मृत अभिलाषाएँ। इन दोनों को लकड़ी और लोहे के घर की जरूरत नहीं। मेरी देह खुले आकाश तले रह सकती है। मेरी अभिलाषाएँ मेरे टूटे हुए मन में रह सकती हैं। इसलिए अब शोक के समान आपकी दया भी मेरे किसी काम नहीं आ सकती।

हीरा० : (दुर्गादास के सामने घुटने टेककर) दुर्गादास! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने तुम्हें नष्ट करके अपने आप को भी नष्ट कर लिया है। मैंने तुम्हारे बच्चों को घर से निकाला था, भगवान् ने मेरा बच्चा मेरे घर से निकाल दिया। मुझसे घृणा न करो। आज तुम्हारे समान मैं भी आशाओं के स्वर्ग का ठुकराया हुआ एक अभागा हूँ।

शाम० : हमारे लाखों रुपये बैंकों में पड़े हैं, और पता नहीं हमारे बच्चे को रोटी का टुकड़ा भी मिलता है; या नहीं। हमारा रुपया किस काम का?

हीरा० : क्या हमारी यह दीन-दशा देखकर भी तुम्हें हम पर दया नहीं आती? दुर्गादास, मुझे क्षमा करो। मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

दुर्गा० : मैं यहाँ तुम्हें देखकर खुश होने के लिए आया था। मगर यह मेरी भूल थी। कोई पिता दूसरे पिता को दुःखी देखकर सुखी नहीं

हो सकता । आग सभी को तपाती है ।

हीरा० : मुझे यह आशीर्वाद न दो, कि भगवान् मेरा बच्चा मुझसे मिला दे । मैं इसके योग्य नहीं हूँ । मगर यह तो कह दो कि वह जीता रहे, और जहाँ रहे, सुखी रहे । मैं इसी से संतुष्ट हो जाऊँगा ।

शाम० : आशीर्वाद दो दुर्गादास !

दुर्गा० : भगवान् ! इनके बच्चे की रक्षा कर ! वह जहाँ है, वहाँ खुश रहे ।

शाम० : दुर्गादास ! भगवान् तुम्हारे मन को शान्ति देगा ।

हीरा० : शामलाल ! यह गरीब है, इसलिए इसका हृदय इतना विशाल और सुकोमल है । अगर यह अमीर होता, तो इसके मुख से उदारता और क्षमा के ये शब्द कभी न निकलते । दुर्गादास ! (पाँव पकड़कर) भाई आओ ! एक बार मेरे घर के अन्दर चलो । जहाँ से तुम्हें अपमानित करके निकाला था, एक बार वहीं बैठकर तुम्हारी पूजा कर लूँ । अब मैं पहला हीरालाल नहीं अब मेरे मन में भी पीड़ा है । अब मेरी आँखों में आँसू हैं । अब मेरे होठों पर भी विनय के शब्द हैं । अब मैं भी मनुष्य हूँ । मनुष्य पर विश्वास करो ।

पहला अंक : नौवाँ दृश्य

स्थान—काशी में कालिदास नाटक कम्पनी का अभ्यास-घर

समय—दोपहर

[अभिनेता, बाजे-तबलेवाले सब जमा हैं। जयकृष्ण बाजेवालों को समझा रहा है, पास ही एक अभिनेता खड़ा है। परे बाटलीवाला एक सोफ़े पर बैठा निरीक्षण कर रहा है। रिहर्सल चालू है।]

जयकृष्ण : (अभिनेता से) तुम तैयार हो ?

अभिनेता : जी हाँ, मैं तैयार हूँ।

जय० : (बाजेवालों को इशारा करके) एक—दो—

[बाजा और तबला शुरू हो जाता है। अभिनेता गाने लगता है।]

गीत

छाँड़ मन ! हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुद्धि उपजति है, परत भजन में भंग।

[अभिनेता इतना बेसुरा गाता है कि जयकृष्ण उसके मुँह पर हाथ रखकर उसे गाने से रोक देता है। बाजा-तबला सब बन्द हो जाता है। बाटलीवाला बिगड़ उठता है।]

बाटलीवाला : (सोफ़े से उठकर) यह गाना है या रोना ?

जयकृष्ण : जितनी मेहनत इस आदमी पर की गई है, उतनी मेहनत अगर किसी गधे पर की जाती, तो वह भी इससे अच्छा गाने लगता। यह गधे से भी गया-गुज़रा है।

बाटली० : मेरे ख्याल में जिस समय परमात्मा राग-विद्या बाँट रहा था, उस समय ये महात्मा भंग पीकर किसी अस्तबल में पड़े सो रहे थे।

चले हैं रागी बनने !

अभिनेता : हुज़ूर !

बाटली० : (नकल करते हुए) हुज़ूर !

अभि० : (और भी मिन्नत के स्वर में) हुज़ूर !

बाटली० : चलो, दफ़ा हो यहाँ से निकलो, दूर हो। मैं तुम्हारा मुँह तक नहीं देखना चाहता। (बाजेवालों से) इस समय आप भी कृपा कीजिए। मेरा दिमाग़ खराब हो गया है।

जय० : (धीरे से) इस समय भाग जाओ। सेठ साहब क्रोध में हैं। और क्रोध न करें तो क्या करें ? सारा गुड़ गोबर हो गया।

[बाजेवाले और तबलेवाले अभिनेता आदि सब उठकर चले जाते हैं। जयकृष्ण बाटलीवाला के पास जाकर खड़ा हो जाता है।]

जय० : यह तो बिल्कुल गया-गुज़रा निकला। न गले में मिठास है, न ताल का ज्ञान।

बाटली० : (क्रोध से) तुम गधे को घोड़ा बनाना चाहते थे। वह क्या कभी बना है ?

जय० : (ठंडी आह भरकर) नाटक होने में पंद्रह दिन बाकी हैं, और अभी तक हमारे पास कोई काम का आदमी ही नहीं। क्या करें, क्या न करें ? कोई रास्ता नहीं सूझता। कोई सूरत नज़र नहीं आती।

बाटली० : सूरत नज़र आ गई थी, और आदमी मिल गया था। मगर वह कहता है भगवान् ने मुझे गला मुफ्त दिया है, मैं भी लोगों को गाना मुफ्त सुनाऊँगा। अगर वह आ जाता तो काशी भर में शोर मच जाता; और हमारी क़िस्मत जाग उठती।

[बाटलीवाला सोफ़े पर बैठ जाता है।]

जय० : और हम भी उस पर ऐसी मेहनत करते, कि उसे हीरा बना देते, हीरा।

बाटली० : अरे भाई ! लोग पतंगों की तरह टूटते, पतंगों की तरह। क्या सुर है ! क्या लोच है ! ! क्या गला ! ! !

जय० : (दूसरी कुरसी पर बैठ कर) मगर किस काम का ?

बाटली० : हम यहाँ रो रहे हैं, और वह नहीं आता। मेरी कंपनी तबाह हो रही है, और वह नहीं आता मैं उसे दो-तीन सौ रुपया महीना देने को तैयार हूँ, और वह नहीं आता (बाहर कोई द्वार खटखटाता है।) कौन है ? (बिगड़कर) कह दो, सेठ साहब नहीं हैं।

सूरदास : (द्वार खोलकर) मैं सूरदास हूँ सेठ साहब !

बाटली० : अरे सूरदास ! (आगे बढ़कर) आओ भाई ! क्या हाल है तुम्हारा ? आज तो बड़ी कृपा की। (कुरसी को पास लाकर) ए ए ए, यहाँ बैठ जाओ। कहो, मजे में तो हो न ?

सूरदास : जी हाँ, आपकी किरपा है।

बाटली० : कहिए, कैसे आए ?

सूरदास : (साहस करके) आपको याद है, आपने उस दिन घाट पर मुझसे कहा था, कि...

बाटली० : हाँ, हाँ, हाँ, मेरी कम्पनी के द्वार तुम्हारे लिए आज भी खुले हैं। हमें एक आदमी की...

जय० : (बात काटकर) जरूरत थी, वह तो हमें मिल गया है। मगर जब तुम चलकर आए तो हम तुम्हें भी रख लेंगे। हम तुमसे न नहीं कह सकते।

[जयकृष्ण बाटलीवाले को आँख से इशारा करता है, बाटलीवाला इशारे का मतलब समझ लेता है और चुप रहता है।]

सूरदास : आप मुझे अब भी रख लेंगे सेठ साहब ?

बाटली० : (खुश होकर, मगर खुशी को छिपाकर) अब जब तुम आए हो, तो 'ना' न करूँगा मैं।

सूरदास : बड़ी किरपा आपकी।

बाटली० : क्या तनख्वाह लोगे ? बोलो !

सूरदास : अब यह मैं क्या बताऊँ सेठ साहब ! मेरा एक बच्चा है। मुझे उसके लिए कपड़ा भी चाहिए, खाना भी चाहिए, खिलौना भी

चाहिए। मुझे अपने लिए कुछ नहीं चाहिए।

बाटली० : देखो, शुरू में तुम्हें एक...

जय० : (रोककर) तीस रुपए महीना दे देंगे हम। इससे ज़्यादा नहीं।

[बाटलीवाला जयकृष्ण की ओर क्रोध से देखता है। जयकृष्ण ज़रा परवाह नहीं करता।]

सूरदास : (खुश होकर) तीस रुपए।

बाटली० : (मतलब न समझकर) पहले पहले ! जब काम अच्छा करने लगोगे, तो बढ़ा दूँगा—यह मेरा इकरार रहा। और मैं जो कहता हूँ, पूरा करता हूँ। मगर शुरू में तीस रुपया !

सूरदास : मेरे लिए तो यह भी बहुत है, भाई !

[जयकृष्ण बाटलीवाले की तरफ देखता है।]

बाटली० : सूरदास ! मैंने भूमि पर रेंगनेवाले तुच्छ कीड़ों को यश और कीर्ति के आकाश का तारा बना दिया है। तुम तो पहले ही रागी हो। चार दिन में चाँद बनकर चमकने लगोगे (जयकृष्ण से) एग्रीमेंट ! (सूरदास से) भई ! तुम्हारा वह गीत मुझे आज भी याद है—'बाबा मन की आँखें खोल !' खूब गाते हो ! (जयकृष्ण एग्रीमेंट देता है।) लो सूरदास, यह अँगूठा लगा दो। (अंगूठा लगवा कर) बस ! यह तुमने अँगूठा नहीं लगाया, अपनी सोती हुई किस्मत को जगा लिया है।

सूरदास : तो क्या आप आज मुझे कुछ...

बाटली० : (मुस्कराकर) पेशगी ! हाँ-हाँ, (जेब से एक नोट निकाल कर) लो दस रुपये का नोट ! तो अब कल से आना शुरू कर दोगे न ?

सूरदास : हाँ भई ! अब तो सूरदास बिक गया तुम्हारे हाथ। (उठकर) तो अब चलता हूँ। आज्ञा है ?

जय० : बड़ी खुशी से। (हाथ थामकर) आइए। मैं आपको बाहर पहुँचा दूँ।

[सूरदास को बाहर पहुँचा देता है और जब चला जाता है, तो द्वार बंद करके बाटलीवाले की ओर देखता है। दोनों खुश नजर आते हैं।]

बाटली० : अब बताओ, मैंने क्या कहा था उस दिन ?

जय० : (सिर झुकाकर) रुपये में सचमुच बड़ी शक्ति है। यह सब कुछ कर सकता है।

बाटली० : रुपया चाहे, तो हवा में उड़ते हुए पक्षी को बाँध ले। अब मेरे नए-नए नाटक निकलेंगे। मेरी कम्पनी चलेगी। अब मेरे यहाँ सोना बरसेगा। जयकृष्ण ! आज हमें सफलता का रास्ता मिल गया है, हमारी तकदीर बदल गई है, हमारे लिए भगवान् ने धन, यश और उन्नति के द्वार खोल दिए हैं। अब ऐश ही ऐश है।

●

दृश्य परिवर्तन

[सूरदास रंग-भूमि पर गाता हुआ दिखाई देता है।]

गीत

छाँड़ मन ! हरि बिमुखन को संग।
जिनके संग कुबुद्धि उपजत है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय-पान कराए, विष नहीं तजत भुजंग,
कागहिं कहा कपूर चुगाए, श्वान न्हवाए गंग।
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषण अंग,
गज को कहा न्हवाए सरिता, बहुरि धरै खहि अंग।
पाहन पतित बाँस नहीं बेधत, रीतो करत निषंग,
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग।

[गीत की समाप्ति पर लोग जोर से तालियाँ बजाते हैं, और वाह-वाह का शोर मचाते हैं। सूरदास सिर झुकाता है। लोग फूल फेंकते हैं।]

[परदा गिरता है।]

●

दूसरा अंक

परदा उठता है, तो एक सफेद परदे पर 'बीस साल के बाद' लिखा दिखाई देता है। देखते-देखते यह परदा भी उठ जाता है।

•

पहला दृश्य

स्थान—लाहौर में शामलाल का घर

समय—दिन का तीसरा पहर

[शामलाल और लाजवन्ती बातें करते प्रवेश करते हैं।]

लाजवंती : आपके जासूसों ने कुछ पता लगाया, या नहीं ?

शाम० : कुछ भी नहीं।

लाज० : मेरा ख्याल है, शंकरदास मर चुका है। अगर जीता होता तो इतने दिन कहाँ बैठा रहता ? अब जासूसों से कहिए, बस करें। मुफ्त में रुपया बरबाद करने से क्या लाभ ?

शाम० : लाभ हो या न हो, पर यह खोज बन्द नहीं हो सकती। शायद किसी दिन भगवान् सुन लें, और मुझे विश्वास है, वे सुनेंगे।

लाज० : बीस साल कम नहीं होते।

शाम० : मेरा पाप भी कम नहीं है। मैंने एक बाप का दिल दुखाया है। (ठंडी साँस लेता है) मैंने एक बच्चे से उसका घर और घर से उसका आराम छीना है।

लाज० : अब इन बातों से क्या होता है ? अब जरा यह बात तो सोचें।

शाम० : तो मुझे बताओ, मैं क्या करूँ? ऐसा मालूम होता है, जैसे मेरा जीवन ही मेरा दंड बन गया है। मैं हर रोज़ मरता हूँ। मैं हर रोज़ जीता हूँ।

लाज० : धीरज धरिए!

शाम० : पापियों को धीरज कहाँ? मैं चाहता हूँ, आज जाकर भाई साहब के सामने सब कुछ स्वीकार कर लूँ। अब यह राज़ मेरे सीने में नहीं रह सकता। अगर रहेगा, तो मैं पागल हो जाऊँगा।

लाज० : मगर यह तो और भी भूल होगी। जानते हो, वे क्या सोचेंगे और क्या कहेंगे तुम्हारी बात सुनकर?

शाम० : मुझे तो कभी-कभी ऐसा संदेह होता है, जैसे वे सब कुछ जानते हैं। उनकी एक-एक बात से मेरा संदेह, विश्वास का रूप धारण कर लेता है। मगर आख़िर में वे एक ऐसी बात कह देते हैं, जिससे मालूम होता है कि वे कुछ भी नहीं जानते। यह एक-एक क्षण में रहस्य खुल जाने की आशंका, यह सम्मान के ऊपर मंडराते हुए अपमान के काले बादल, यह मृत्यु के मुँह में फँसा हुआ जीवन, यह सब असह्य है। एक आदमी को एक बार गोली मार कर समाप्त कर दो। यह मामूली बात है। मगर दिन-रात उसके चारों तरफ़ गोलियाँ चलती रहें, और वह हर समय मौत को अपनी तरफ़ आता देखे, और तड़प-तड़प कर रह जाए, यह नरक की आग में जलने से भी भयानक है। (लाजवंती की तरफ़ मुड़कर) मुझे रोकने का यत्न न करो। मैं आज सब कुछ कह देना चाहता हूँ ताकि एक बार में झगड़ा समाप्त हो जाए, और मेरे दिल से बोझ उतर जाए।

लाज० : और आपके भाई साहब का क्या हाल होगा? आपने यह भी सोचा?

शाम० : उनकी आँखों से परदा उठ जाएगा। वे अँधेरे में न रहेंगे। वे सच जान लेंगे।

लाज० : आपके भाई साहब को दुनिया में दो आदमियों से प्यार

था। एक अपने बेटे से, दूसरा आप से। आपके मन में लोभ जागा, उनका बेटा खो गया। अब आप जाकर बता दीजिए कि यह पाप आपने किया है, उनका भाई भी खो जाएगा। उन्होंने बेटे का दुख सह लिया था, उस समय उनका शरीर और मन दोनों जवान थे। मगर अब भाई का दुख न सह सकेंगे—आज उनका शरीर और मन दोनों कमज़ोर हो चुके हैं।

शाम० : (कुछ समझ कर, कुछ न समझ कर) मगर एक बात बताओ। क्या तुम मुझसे घृणा नहीं करतीं ?

लाज० : मैं आपसे घृणा नहीं करती, आपके लिए मंगल-कामना करती हूँ।

शाम० : मगर एक दिन तुमने मुझसे साफ़-साफ़ कहा था कि तुम मुझसे घृणा करती हो।

लाज० : उस समय मेरा यही धर्म था।

शाम० : और आज कहती हो, तुम मुझसे घृणा नहीं करती, और मेरे लिए मंगल-कामना करती हो !

लाज० : आज मेरा यही धर्म है।

शाम० : लाज ! मैं कुछ नहीं समझता, तुम क्या कह रही हो ?

लाज० : मैं कह रही हूँ, कि भाई साहब से कुछ न कहिए और अपना रहस्य अपने ही पास रखिए।

शाम० : तो तुम चाहती हो, मैं अकेला ही इस आग में जलता रहूँ ? अच्छा बाबा ! यह आग मैंने जलाई है, इसमें मैं ही जलूँगा, और इसकी हल्की-सी आँच भी अपने भाई तक न जाने दूँगा। मैं पाप के इस पथ में अकेला हूँ, और मेरे साथ कोई नहीं है।

लाज० : (प्यार से) तुम्हारे साथ मैं हूँ।

शाम० : तू हिन्दू नारी है—तू अपने पति के पाप का फल हँसते-हँसते भोगेगी।

[तेज़ी से प्रस्थान]

लाज० : स्वामी ! तुमने पाप किया है। और तुम्हारा पाप अगर संसार के सामने खुल जाए, तो वह तुमसे घृणा करने लगे। मगर जिस प्रकार तुम अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हो, उसे देखकर मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। भगवान् तुम्हारी मेहनत को सफल करे, और यह पाप की छाया तुम्हारे मन से दूर हटे।

[धीरे-धीरे प्रस्थान]

दूसरा अंक : दूसरा दृश्य

स्थान—काशी में सूरदास के घर में दीपक का कमरा

समय—दिन के चार बजे

[कल्लो की माँ धोबी से धुले हुए कपड़े ले रही है, और उससे झगड़ा कर रही है ।]

कल्लो की माँ : मैं कहती हूँ बासठ थे । दो और साठ ।

धोबी : न, इकसठ थे । यह देखिए — सूरदासजी की तीन धोतियाँ, तीन कुरते, दो कोट—आठ हुए ! और दीपक की सात पतलूनें, सात कोट, पाँच कुरतियाँ, पाँच गंजियाँ, छः कमीज़ें ।

कल्लो० : और वह नीली क़मीज़ कहाँ है ?

धोबी : (याद कर) हाँ ! वह रह गई !

कल्लो० : (विजयी ढंग से) मानता ही न था मुरदार ! अच्छा पहले वह क़मीज़ ला, धुलाई के लिए कपड़े फिर मिलेंगे । (कपड़े उठाकर मेज़ की तरफ़ जाते हुए) पिछली बार एक धोती भी रह गई थी । दोनों लेकर आओ ।

[धोबी का जाना, सूरदास का आना]

सूरदास : कल्लो की माँ ! दीपक के कपड़े आ गए ?

कल्लो० : हाँ बाबा ! आ गए । आज कपड़े न आते, तो मेरी शामत आती । कल ही शोर मचा रहा था ।

[बाहर कोई द्वार खटखटाता है ।]

सूरदास : (ऊँची आवाज़ से) कौन है रे ?

आवाज़ : (बाहर से) दरजी !

[दरजी का प्रवेश]

कल्लो० : आज यह दरजी काहे के लिए आया है ? क्या बनवाया जाएगा इससे ?

सूरदास : (कुरसी पर बैठकर) दीपक कहता था, दो सूट और सिलाने हैं, इसलिए......

कल्लो० : बाबा ! आप लड़के का सिर फिरा देंगे। इतने कपड़े कम हैं, जो और सिलाना चाहते हैं ? जितने कपड़े इसके पास हैं, उतने कपड़ों से दुकान खुल सकती है।

सूरदास : कल्लो की माँ ! तुम आजकल के लड़कों को नहीं जानती। न तुम आजकल के लड़कों के फ़ैशन को जानती हो।

कल्लो० : मगर मैं यह जानती हूँ, कि आप लड़के को खराब कर देंगे। (दरजी से) ओ दरजी के बच्चे ! भाग जा। (दरजी डर कर भाग जाता है।) हर रोज सूट ! हर रोज़ सूट ! सूट न हुए, गाजर और मूली की तरकारी हो गई।

सूरदास : (दबी आवाज़ में) नहीं सिलाना चाहती, तो न सही। मगर दीपक बिगड़ेगा।

कल्लो० : नहीं बिगड़ता।

सूरदास : (मुस्कराकर) अच्छा भाई, तुम्हारी मरज़ी !

[कल्लो की माँ दीपक का सूट खूँटी पर लटका देती है, और बाक़ी कपड़े आलमारी में तह करके रखती है। इतने में नवयुवक दीपक नेकटाई बाँधते-बाँधते प्रवेश करता है, और कल्लो की माँ को देखकर पूछता है—]

दीपक : कल्लो की माँ ! मेरा सूट निकाला ?

[कल्लो की माँ मुँह से जवाब नहीं देती, खूँटी की ओर इशारा करती है, और तौलिया लेकर बाहर चली जाती है। दीपक खूँटी के पास जाकर कपड़े पहनता है और गुनगुनाता है।]

दीपक : (गाते हुए) मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

सूरदास : दीपक ! क्या आज रेडियो में यही गीत गा रहे हो तुम ?

दीपक : हाँ दादा !

सूरदास : मगर मैंने तुम्हें ऐसे तो नहीं सिखाया था बेटा ?

दीपक : वहाँ ठीक गाऊँगा ।

[कल्लो की माँ और कपड़े लिये आती है, और भूल से एक पुस्तक गिरा देती है । सूरदास चौंकता है, दीपक मुड़कर देखता है ।]

दीपक : (बिगड़कर) मेरी पुस्तक गिरा दी ? ओ बाबा ! यहाँ तो हर समय भूचाल आता रहता है ।

कल्लो० : तुम तो इस तरह चिल्लाते हो, जैसे तुम्हारी पुस्तक नहीं गिरी, आकाश गिर पड़ा है । (पुस्तक मेज पर रख देती है ।) लो आकाश फिर अपनी जगह पर चला गया ।

दीपक : मैं कई बार कह चुका हूँ कि मेरी कोई भी पुस्तक जमीन पर न गिरे । मैं यह सहन नहीं कर सकता ।

कल्लो० : और मैं भी कई बार कह चुकी हूँ कि तुम बिगड़कर बात न किया करो । मैं यह सहन नहीं कर सकती । तुम सीधी तरह बोला करो ।

दीपक : (और भी बिगड़कर) कल्लो की माँ !

कल्लो० : (और भी कड़क कर) दीपक के बच्चे !

सूरदास : अरे बाबा ! यह तुम लोगों की बात-बात में लड़ने की आदत बुरी है । क्या मिलता है तुम्हें इससे ?

दीपक : मैंने क्या कहा है ? आप ही कहिए !

कल्लो० : और मैंने क्या कहा है ?

सूरदास : अरे भाई ! किसी ने कुछ नहीं कहा, अब झगड़ा समाप्त करो । ज़रा-सी बात हो जाए, उसी में लड़ने लगते हैं ।

[मोटर के हार्न की आवाज़ आती है]

दीपक : दादा, थियेटर की गाड़ी आई ।

[दीपक बूट के फ़ीते बाँधने लगता है । सूरदास अपना अँगरखा पहनता और जाने को तैयार होता है ।]

सूरदास : अभी तुम तो कुछ देर ठहर कर जाओगे न ?

दीपक : जी नहीं। मुझे एक मित्र के यहाँ भी जाना है।

सूरदास : मैं आज तुम्हारा गाना सुनूँगा। देखूँ, वहाँ तुम घबरा तो नहीं जाते ?

[सूरदास चला जाता है, कल्लो की माँ मेज़ पर से एक पुस्तक उठाती है तो उसमें से एक चित्र निकल आता है। कल्लो की माँ वह चित्र दीपक के पास ले जाती है, और पूछती है—]

कल्लो० : यह किसकी तस्वीर है ?

दीपक : (डरकर) कल्लो की माँ देखो न बात यह है यह चित्र—

कल्लो० : तो आजकल यही पढ़ाई होत तुम्हारी ? बुलाऊँ अभी सूरदास को ? बोलो !

दीपक : (मिन्नत करते हुए) ना कल्लो की माँ ! यह ग़जब न कर बैठना कहीं।

[कल्लो की माँ मुस्कराती है, दीपक पुस्तक लेकर चला जाता है। कल्लो की माँ सोचने लगती है। शायद यह कि अब दीपक लड़कियों के फेर में पड़ने लगा।]

दूसरा अंक : तीसरा दृश्य

स्थान—रूपकुमारी का घर
समय—सन्ध्या

[रूपकुमारी कपड़े बदल कर बाल बना रही है, और कुछ गुनगुना रही है। इतने में उसकी विधवा माँ यशोदा का प्रवेश।]

यशोदा : तैयार हो गई? चलो चलें।

रूपकुमारी : (चौंककर) कहाँ चलना होगा माँ?

यशोदा : लीला की पार्टी में, और कहाँ?

रूप० : मगर मैं तो आज न जा सकूँगी माँ!

यशोदा : क्यों, क्या बात है?

रूप० : आज दीपक की चाय है।

यशोदा : (क्रोध से) तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?

रूप० : वाह! कल आपके सामने ही तो कहा था।

यशोदा : (टहलते-टहलते) मेरा ख्याल है, तुम्हें इस पार्टी में ज़रूर चलना चाहिये।

रूप० : मैं चलने को तैयार हूँ, मगर दीपक क्या कहेगा?

यशोदा : कहना क्या है? मैं समझा दूँगी। (पास आकर हाथ पकड़ लेती है।) चलो, वहाँ जाना ज़रूरी है। दीपक को चाय फिर पिला दी जाएगी।

रूप० : आप चली जाइए। मेरा जी नहीं चाहता है।

यशोदा : (पास बैठकर) देखो बेटी! अब तुम छोटी नहीं हो, इसलिए मैं तुमसे कुछ छुपाना नहीं चाहती। बात यह है, कि वहाँ रतन-

लाल भंडारी भी आ रहा है। यह भंडारी पंजाब के प्रसिद्ध लखपति हीरालाल का सम्बन्धी है और अभी-अभी विलायत से इंजीनियर बनकर आया है। (थोड़ी देर चुप रहने के बाद) आखिर तुम्हारा ब्याह भी तो कहीं करना होगा, और आजकल अच्छे लड़के आसानी से नहीं मिलते।

[रूपकुमारी क्रोध से उठकर परे चली जाती है, दीवार के साथ पीठ लगाकर खड़ी हो जाती है, और क्रोध से मुँह फुलाकर कहती है—]

रूप० : आप ऐसी बातें मुझसे न किया करें। मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। मुझे ऐसी बातों से कोई वास्ता नहीं।

यशोदा : (मुस्कराकर) इतनी बड़ी हो गई, मगर फिर भी पगली ही रही। लड़कियों को घर में तो राजे-महाराजे भी नहीं बिठा रखते। हमारी तो बिसात ही क्या है ? मैं तुम्हारे हाथ जल्दी से जल्दी पीले कर देना चाहती हूँ।

रूप० : (और भी चिढ़कर) आप फिर वही बातें करने लगीं !

यशोदा : (प्यार से पुचकारकर), अच्छा बाबा ! अब नहीं करती। चलो चलें। देर हो रही है।

रूप० : मैंने कह दिया, मैं नहीं जा सकती।

यशोदा : (क्रोध से) अच्छा न जा। मर !

[यशोदा चली जाती है, रूप कुछ सोचने लगती है। इतने में दीपक द्वार में आकर खड़ा हो जाता है।]

दीपक : (मुस्कराकर) नमस्ते।

रूप० : (अपनी हाथ-घड़ी देखकर) बीस मिनट लेट !

दीपक : मुझे अफसोस है। (आकर कुरसी पर बैठ जाता है।) आज माँ जी कुछ खफा हैं क्या ? मैंने नमस्ते कही, उन्होंने कुछ जवाब ही नहीं दिया। मुँह फेरकर चली गईं। क्या बात है ?

रूप० : (मुस्कराकर) कुछ सोच रही होंगी। (पुकारकर) रंजीत ! चाय यहीं ले आओ। (दीपक से) यहीं पियेंगे।

दीपक : मगर माँ जी कहाँ गई हैं ?

रूप० : यहाँ पास ही एक पार्टी है, वहाँ गई हैं।

दीपक : और तुम क्यों नहीं गई ?

रूप० : अगर मैं चली जाती, तो तुम्हें यहाँ चाय कौन पिलाता ? निराश लौट जाते।

दीपक : (मेज पर हाथ फैलाकर) मामूली बात थी। आज लौट जाता, कल फिर चला आता।

रूप० : अभी मैंने एफ० ए० पास किया है, जब तुम्हारी तरह बी० ए० की परीक्षा दे लूँगी, तो मैं भी बेपरवा और असभ्य हो जाऊँगी। इसके पहले नहीं।

दीपक : तो मैं असभ्य हूँ ?

रूप० : जो आदमी किसी को चाय पर बुलाकर आप कहीं भाग जाने को बुरा न समझे, उसके लिए और शब्द कौन-सा है ? यह तुम ही बता दो ?

दीपक : माँ की आज्ञाकारिणी बिटिया रानी !

[रंजीत चाय का समान रख जाता है। रूपकुमारी चाय बनाती है।]

रूप० : देखूँगी, तुम भी किसी दिन बाप के आज्ञाकारी बेटा राजा बनते हो या नहीं ?

[चीनी ज्यादा डाल देती है।]

दीपक : मालूम होता है, आज तुम्हारे सारे घर की चीनी मेरे ही प्याले में आ जाएगी।

रूप० : (अपनी भूल समझकर) तो आप इसे रहने दें, मैं दूसरा प्याला तैयार किए देती हूँ।

दीपक : (वही प्याला उठाकर) मुझे ज्यादा चीनी पीने की आदत है।

[दीपक चाय पीता है।]

रूप० : (अपना प्याला तैयार करते हुए) भंडारी साहब कहा

करते हैं, ज्यादा चीनीवाली चाय पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

दीपक : (चाय पीना बन्द करके) मैं यह तो नहीं जानता कि ज्यादा चीनी हानिकारक है या नहीं ! मगर यह जानता हूँ कि भंडारी साहब का बार-बार जिक्र मेरे लिए हानिकारक है। आखिर यह भंडारी साहब कौन हैं, जिनका तुम बार-बार जिक्र किया करती हो।

रूप० : यह भंडारी इंजीनियर है। अभी विलायत से पढ़कर आया है, और माँ जी की राय में बड़ा योग्य आदमी है !

दीपक : तो मालूम होता है, यह भंडारी साहब चाय में नमक मिलाकर पीते होंगे।

रूप० : नमक मिलाकर नहीं पीते। (मुस्कराकर) बरफ मिलाकर पीते हैं। ठंडी चाय।

[दीपक कहकहा लगाकर हँसता है।]

दीपक : मालूम होता है, अजीब आदमी हैं यह।

रूप० : अजीब नहीं है, सनकी है। [दीपक खुश होता है।] मगर है रौनकी। [दीपक उदास हो जाता है।] और चाय दूँ ?

दीपक : (मुँह फुलाकर) नहीं ! [सोच में पड़ जाता है]

रूप० : (दीपक के दिल की बात समझकर) आप क्या सोच रहे हैं ?

दीपक : (रुखाई से) कुछ नहीं।

रूप० : मैं बताऊँ, आप क्या सोच रहे हैं ? आप यह सोच रहे हैं कि यह भंडारी अगर इस घर में रोज-रोज आने लगा, तो आप को भी ठंडी चाय मिलने लगेगी — बरफ वाली।

दीपक : भगवान् हमें सदा गरम चाय ही देगा। ठंडी हमारे दुश्मन पिएँ।

[बाहर से मोटर-हार्न की आवाज आती है।]

रूप० : (चौंककर) माँजी आ गईं।

दीपक : इतनी जल्दी।

[यशोदा और भंडारी का प्रवेश। रूपकुमारी भंडारी को और यशोदा दीपक को देखकर झुँझला उठती है।। मगर दीपक और भंडारी मुस्कराते रहते हैं। दीपक और रूप दोनों खड़े हो जाते हैं, और स्वागत करते हैं।]

भंडारी : (दीपक को देखकर यशोदा से) मेरा मतलब है, क्या आप मेरा इनसे परिचय करा देंगी ?

यशोदा : (भंडारी की तरफ इशारा करके) मिस्टर रतनलाल भंडारी। और (दीपक की तरफ इशारा करके) आपने सूरदास का नाम तो सुना ही होगा, उनके पुत्र दीपकचन्द !

भंडारी : अच्छा, सूरदास के पुत्र ! (याद करते हुए) उनसे तो मैं एक-आध बार मिला भी हूँ। (हाथ मिलाकर) So very glad to see you[1] आपके पिताजी तो खूब गाते हैं। मुझे विश्वास है, कि अगर वे इंग्लैंड में होते, तो चाँदी के महल खड़े कर लेते। क्या आपको भी कुछ गाने-बजाने का शौक है ?

यशोदा : (अपनी अप्रसन्नता को दबाने का यत्न करते हुए) जी हाँ, इन्हें भी गाने का शौक है।

रूप० : गाने का शौक है ! सूरदास के बाद इन-जैसा गानेवाला शहर भर में दूसरा कोई नहीं।

[यशोदा रूप की ओर क्रोध से देखती है। रूप अपना मुँह दूसरी तरफ फेर लेती है।]

भंडारी : खूब ! Worthy son of a worthy father.[2] (दीपक से) आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।

दीपक : मुझे भी बड़ी खुशी हुई।

यशोदा : रूप ! भंडारी साहब कहते हैं, चलो आज नाटक देखने

---

१. आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।
२. योग्य पिता का योग्य पुत्र।

चलें। मैं तुम्हें लेने आई हूँ।

भंडारी : (दीपक से) आप भी चलिए। मेरा मतलब है, जब मैं इंग्लैण्ड में था, तो हर इतवार...

रूप० : (दीपक से) चलोगे ?

दीपक : मुझे क्षमा कीजिए, आज रेडियो पर गाना है। और (हाथ घड़ी देखकर) मुझे पहले ही देर हो चुकी है। और देर हुई, तो काम खराब हो जायगा।

यशोदा : इनके तो घर में गंगा है। इनको नाटक में क्या दिलचस्पी हो सकती है ?

दीपक : (मुस्कराकर) जी हाँ ! नमस्ते।

भंडारी : (मुस्कराकर) नमस्ते नौजवान !

[दीपक का जल्दी-जल्दी प्रस्थान]

भंडारी : (दीपक की तरफ़ देखते-देखते) दिलचस्प आदमी है। (यशोदा की तरफ़ मुड़कर) मेरा मतलब है, शकल-सूरत से मालूम होता है कि इसमें जीवन है, और जोश है, और Personality अर्थात् व्यक्तित्व है। इंग्लैंड में लोग ऐसे नौजवानों को बहुत पसंद करते हैं। और लड़कियाँ तो ऐसे नौजवानों पर मुग्ध हो जाती हैं।

यशोदा : (बात का रुख बदलने के लिए) क्या आप एक प्याला चाय न पियेंगे ? रूप ! मँगाओ ना !

भंडारी : (रोककर) चाय मेरी सबसे बड़ी कमज़ोरी है। मगर इस समय नहीं। इस समय चलकर सीटें बुक कराना है।

[भंडारी का प्रस्थान, रूप अपने कमरे में जाना चाहती है।]

यशोदा : (गम्भीरता से) रूप !

रूप० : (जाते-जाते मुड़कर) क्यों माँ ?

यशोदा : मुझे तुम्हारी ये बातें बिलकुल पसन्द नहीं हैं।

रूप० : मेरी कौन-सी बातें माँ ?

यशोदा : मैं नहीं चाहती कि दीपक यहाँ आया करे।

रूप० : (सहमकर) क्यों माँ ?

यशोदा : क्योंकि अब मुझे सब कुछ मालूम हो गया है।

रूप० : (सिर झुकाकर) क्या मालूम हो गया है ?

यशोदा : मेरा मुँह न खुलवाओ। क्या तुम जानती हो, वह किस का बेटा है ?

रूप० : सूरदास का !

यशोदा : सूरदास का बेटा होता जब भी कोई बात थी। मैं समझ लेती, कि वह एक ग़रीब मगर शरीफ़ अंधे का बेटा है। मगर वह सूरदास का भी बेटा नहीं है। मुझे आज ही मालूम हुआ है कि सूरदास ने उसे घाट पर पड़ा पाया था। जाने किसका बेटा है ? किसी भंगी का, या चमार का ?

रूप० : (क्रोध से) बिल्कुल झूठ !

यशोदा : (गम्भीरता से) बिल्कुल सच !

रूप० : मैं कभी नहीं मान सकती।

यशोदा : तुम्हारे न मानने से क्या होता है ? अब आया, तो साफ़ कह दूँगी कि यहाँ न आया करे ! बिगड़ता है, तो बिगड़ा करे। मुझे किसी का डर नहीं है।

रूप० : बहुत अच्छा ! अब वह यहाँ कभी न आएँगे। मैं उन्हें अभी लिखे देती हूँ।

[रूप उठकर मेज़ के पास चली जाती है, और एक चिट्ठी लिखती है। इसके बाद नौकर बुलाने को घंटी बजाती है।]

रूप० : मैंने लिख दिया है कि वे यहाँ न आया करें।

यशोदा : बहुत अच्छा किया !

[नौकर आता है।]

रूप० : यह चिट्ठी डाक में डाल दो।

[नौकर पत्र लेकर चला जाता है।]

रूप० : जहाँ अपमान होता हो, वहाँ कोई क्यों आएगा ? कोई घर

से बाहर थोड़ा ही बैठा है ?

[रूपकुमारी जाकर सोफ़े पर बैठ जाती है। यशोदा धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसे मनाना चाहती है।]

यशोदा : बेटी ! तुम तो खामखाह क्रोध करती हो। मगर इसमें क्रोध की कौन-सी बात है ? ज़रा सोचो।

रूप० : (क्रोध से) क्या सोचूँ ? शिक्षा आपने मुझे वह दी है, जो भारत में बहुत कम लड़कियों को दी जाती है। पुस्तकें प्रोफ़ेसरों ने मुझे वे पढ़ाई हैं, जिनमें स्वाधीनता को संसार की सबसे बड़ी विभूति और जात-पाँत को, ऊँच-नीच को मानव-हृदय का सबसे बड़ा पतन सिद्ध किया गया है। और आप मुझसे आशा उन कामों की रखती हैं, जो मेरी अठारहवीं शताब्दी की परदादी अपनी अनपढ़ देहाती बेटियों में रखती थीं। मैं कहती हूँ, अगर आपकी यही कामना थी, तो आपने मुझे अँगरेजी कालेज की बजाय किसी पुराने ढर्रे की पाठशाला में क्यों नहीं पढ़ाया ? मैं उसी जलवायु में पलती, उसी में बड़ी होती, और बात-बात में आपकी आँख का इशारा देखा करती ! न मेरी कोई राय होती, न मेरी कोई मरज़ी होता।

यशोदा : मगर बेटी ! मैं जो कुछ कर रही हूँ, तुम्हारे ही भले के लिए कर रही हूँ।

रूप० : (क्रोध से) मेरे भले के लिए ? आप मेरी पसन्द और खुशी की ज़रा परवा न करते हुए अपने दिल की इच्छा मुझ पर ज़बरदस्ती लादना चाहती हैं, यह मेरे भले के लिए है ? आप मेरा दिल अपनी मरज़ी तले मसल देना चाहती हैं, यह मेरे भले के लिए है ? आप इसे मेरा भला समझती होंगी, मैं इसे अपना भला नहीं समझती। मैं इसे अपना बुरा समझती हूँ।

यशोदा : तो मैंने तुम्हें जो पढ़ाया है, यह मेरा अपराध है ?

रूप० : (रोते हुए) सब मेरा ही अपराध है ! आपका अपराध कैसे हो सकता है ?

[टेलिफ़ोन की घण्टी बजती है। यशोदा उठकर रिसीवर हाथ में लेती है, और सुनती है।]

यशोदा : [क्रोधपूर्ण स्वर से] कौन है ? हैलो, कौन है ? (ज़ोर से) मैं पूछती हूँ, कौन है ?

[कोई जवाब नहीं आता, यशोदा टेलीफ़ोन हाथ से रख देती है। घण्टी फिर बजती है। यशोदा टेलिफ़ोन उठाती है। इसके साथ ही एक तरफ़ का परदा उठता है, जहाँ भंडारी टेलिफ़ोन पर बातचीत करता दिखाई देता है। अब टेलिफ़ोन पर इधर यशोदा है, उधर भंडारी है, दोनों बातें करते हैं।]

इधर

यशोदा : (मुस्कराकर) क्या भंडारी साहब हैं ? कहिए...जी हाँ... मैं बोल रही हूँ।

उधर

भंडारी : मेरा मतलब है, मैंने टिकट खरीद लिए हैं। आप ज़रा जल्दी आ जाइए।

इधर

यशोदा : बहुत अच्छा ! हम अभी आ रहे हैं...जी, पाँच मिनट में! (रूप जूता खोल देती है। यशोदा उससे पूछती है—) यह तुमने जूता क्यों खोल दिया ?

उधर

[अंतिम वाक्य भंडारी टेलिफोन पर सुनता है, और समझता है कि यह उससे कहा गया है। वह हैरान होता है]

भंडारी : मैंने जूता कब खोला है ! हैलो—मेरा मतलब है— मैंने जूता नहीं खोला।

इधर

यशोदा : (टेलीफोन पर) हम अभी आ रहे हैं। हैलो...भंडारी साहब ! हम अभी आ रहे हैं।

रूप० : मगर मैं नहीं जाऊँगी ।

यशोदा : (टेलीफोन के रिसीवर पर हाथ रखकर और रूप को सम्बोधन कर के) तुम क्यों नहीं जाओगी ?

रूप : (रुखाई से) अब अगर किसी का जी न चाहे, तो वह क्या करे ? आप चली जाइए । मेरा जी नहीं चाहता । मैं नाटक देखने नहीं जाऊँगी ।

यशोदा : (क्रोध में हाथ रिसीवर पर से हट जाता है) इतना पढ़-लिख कर तुमने यही सीखा है ?

[इधर यशोदा के मुँह से ये शब्द निकलते हैं, उधर भंडारी के कानों में पहुँचते हैं]

उधर

भंडारी : (आश्चर्य से) पढ़-लिख कर मैंने क्या सीखा है ? लो...हैलो...हैलो

इधर

रूप० : जो कुछ भी हो, मैं नहीं जाऊँगी ।

यशोदा : (टेलीफोन पर हाथ रखकर) मगर बेटी, ज़रा सोचो तो सही, अगर तुम न गई, तो भंडारी अपने जी में क्या कहेगा ।

रूप० : जो मरज़ी हो, कहे ।

[यशोदा जोश में फिर भूल जाती है कि उसके हाथ में रिसीवर है]

यशोदा : अच्छा, बक-बक मत करो !

उधर

भंडारी : (हैरान होकर) बक-बक मत करूँ !

इधर

[यशोदा टेलीफोन का रिसीवर हाथ से रख देती है; इसके साथ ही भंडारी के ऊपर परदा गिर जाता है । अब एक तरफ़ यशोदा मुँह फुला कर बैठ जाती है, दूसरी तरफ़ रूप अनजाने ही रेडियो खोल देती है । इसके साथ ही दीपक का गीत शुरू हो जाता है—]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?
सचमुच तेरी रात अंधेरी, संकट में है प्रान,
बाँध कमरिया, ढूँढ़ डगरिया, कृपा करे भगवान् ।
मूरख मन ! होवत—
दुख सुख दोनों एक बराबर, दो दिन के मेहमान,
यह भी देखा, वह भी देख ले, दोनों को पहचान।
मूरख मन ! होवत—

[परदा गिरता है, मगर गीत जारी रहता है।]

दूसरा अंक : चौथा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—संध्या

[रेडियो पर पिछले दृश्यवाला गीत गाया जा रहा है। रायबहादुर हीरालाल अपने घर में कमर पर हाथ धरे इधर-उधर टहल रहे हैं, और दीपक का गीत सुन रहे हैं, मगर वे यह नहीं जानते कि यह गीत गाने वाला उनका बेटा है]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

मूरख मन ! होवत—

दोहा

आनन्द नगरिया दूर नहीं मन ! काहे को घबरावत है।
भगवान् के घर से तेरे लिए, एक सुख-संदेसा आवत है।

मूरख मन ! होवत—

[गीत की समाप्ति पर रायबहादुर रेडियो बन्द कर देते हैं। शामलाल प्रवेश करता है। रायबहादुर उससे कहते हैं—]

हीरा० : शामलाल ! अभी रेडियो पर किसी ने बहुत बढ़िया गीत गाया है—"मूरख मन ! होवत क्यों हैरान"। उसकी अंतिम पंक्ति थी 'भगवान् के घर से तेरे लिए एक सुख-संदेसा आवत है।' मैं सोचता हूँ, क्या सचमुच मेरे लिए कोई सुख-सन्देसा आनेवाला है ? क्या सचमुच मेरे जीवन के ये काले दिन समाप्त होनेवाले हैं ?

शाम० : हो सकता है, भाई साहब ! हो सकता है !

हीरा० : (हवा में देखते हुए) आज मेरे कानों ने आनन्द का संगीतमय संदेशा सुना है आज मेरा बुडढा मन आशा की लाठी लेकर खड़ा होने का यत्न कर रहा है।

शाम० : मैं भी आपको आशा दिलाता हूँ।

हीरा० : मगर शामलाल ! मुझे एक बात बताओ; जो आदमी रुपया लेकर किसी को आशा और सांत्वना देता है, उसकी आशा और सांत्वना का क्या मूल्य है ?

शाम० : (सहमकर) क्या मतलब ?

[शामलाल समझता है, शायद हीरालाल ने फिर उस पर चोट की है। इसलिए वह डर जाता है।]

हीरा० : नहीं समझे ? देखो, मैं समझाता हूँ। मैंने तुम्हें रुपया दिया, तुमने मुझे सांत्वना दी। इस सांत्वना का क्या मूल्य है ? वह सांत्वना तुमने मुझे दी नहीं, मेरे हाथ बेची है। मैंने उसे प्रसाद के रूप में नहीं पाया, मैंने उसे मूल्य देकर खरीदा है। वास्तविक सांत्वना वह है, जिसके आगे और पीछे धन का सवाल न हो, जो पैसे के बिना मिले।

शाम० : (और भी सहमकर) मगर भाई साहब ! मैंने तो आपको पैसा लेकर सांत्वना नहीं दी।

हीरा० : (बात काटकर) यह आदमी जो गा रहा था, अगर इसे रेडियोवाले पैसे न देते, तो वह कभी न गाता। अगर मैं यह रेडियो का सेट न खरीदता, तो मैं यह गाना कभी न सुन सकता। इसलिए इस सांत्वना के गीत और गीत की सांत्वना दोनों का दैवी महत्त्व और दैवी मूल्य नहीं है। इन्हें हर कोई खरीद सकता है। यह हर पैसेवाले के लिए है।

[शामलाल शांति की साँस लेता है।]

हीरा० : शामलाल ! मैंने सुना है, तुमने दिलीप को खोजने के लिए जासूस छोड़ रखे हैं। और मैंने यह भी सुना है कि तुम उनका

खर्च अपनी गिरह से दे रहे हो। क्या यह सच है ?

शाम० : (सिर झुकाकर) जी हाँ !

हीरा० : क्या फ़ायदा ? अब कुछ न होगा। इतने साल बीत गए हैं। अगर मिलना होता, तो मिल चुका होता। मेरा मन कहता है, अब न मिलेगा।

[नौकर आता है।]

शाम० : क्या है ?

नौकर : तार !

[शामलाल तार लेकर पढ़ता है। नौकर चला जाता है]

शाम० : (खुशी से) भाई साहब ! बधाई हो ! भगवान् ने सुख का सन्देश भेज दिया।

हीरा० : क्या है ? दिखाओ तो।

शाम० : मेरे आदमियों ने सूचना दी है कि दिलीप का पता मिल गया।

हीरा० : मेरा दिल तो अब इतना मुरदा हो गया है कि यहाँ आशा आती भी है, तो थोड़ी देर में मर जाती है। यह भी आशा की शक्ल में धोखा होगा।

शाम० : (सुना अनसुना करके) वे कहते हैं, वह काशी में है। मैं वहाँ जाना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।

हीरा० : (धीरे से) तुम्हें आशा है ?

शाम० : (जोश से) मुझे विश्वास है।

हीरा० : अगर तुम्हें विश्वास है, तो चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ। शायद मेरा सोया हुआ भाग्य काशी में जागनेवाला हो।

[दोनों का प्रस्थान]

दूसरा अंक : पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—दोपहर

[दीपक पूरा सूट पहने और घबराए हुए इधर-उधर टहल रहा है, और कुछ सोच रहा है। इतने में वह जेब से एक पत्र निकालता है और उसे ऊँची आवाज़ से पढ़ता है।]

'दीपक : दीपक ! मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ, कि तुम कृपया हमारे घर न आया करो !—तुम्हारी रूप''

[दीपक चिट्ठी को लपेटकर फिर जेब में रख लेता है। कल्लो की माँ का प्रवेश।]

कल्लो० : दीपक !

[दीपक उत्तर नहीं देता। कल्लो की माँ दीपक के निकट आ जाती है, और मातृ-स्नेह से कहती है।]

कल्लो० : क्यों दीपक ! कहाँ जा रहे हो ?

[दीपक उत्तर दिए बिना बाहर चला जाता है।]

कल्लो० : (क्रुद्ध होकर) वाह रे ! अभी तो सूरदास की कमाई खा रहा है, अभी से इतना गर्व। पहले कुछ कमा ले, फिर गर्व भी कर लेना !

[सूरदास का बोलते-बोलते प्रवेश]

सूरदास : क्या है कल्लो की माँ ? क्या हुआ ?

कल्लो० : (और भी क्रोध से) होना क्या है ? सूट पहनकर खड़ा था। मैंने पूछा कहाँ जा रहे हो ? मेरी ओर देखा, और खटपट करके

बाहर चला गया। मेरी बात का जबाब ही कोई नहीं। जैसे मैं पत्थर हूँ।

सूरदास : (एक कुरसी पर बैठते हुए) कौन बाहर चला गया है, कल्लो की माँ ?

कल्लो० : वही आपका दीपक, और कौन ? अपने उसका माथा कुछ खराब कर दिया है, कुछ खराब कर देंगे।

सूरदास : (मुस्कराकर) और तुमने उसका माथा खराब नहीं किया ? ज़रा-सा उदास हो जाता है, तो मरने लगती हो !

कल्लो० : झूठी बात ! मैं कभी नहीं मरती ! (थोड़ी देर बाद) इतना भी नहीं बता सकता कि कहाँ जा रहा है ? बताकर चला जाता, मैं रोकती थोड़े ही थी।

सूरदास : मैं समझ गया। आज उसका परीक्षा-फल निकलने वाला है, वह देखने जा रहा होगा। तुम पूछ बैठी, कहाँ जा रहे हो ? उसे गुस्सा चढ़ गया। तुम्हें कितनी बार समझाऊँ कि जब कोई किसी काम से बाहर जाने लगे, तो उसे 'कहाँ' पूछने से काम खराब हो जाता है। और जिसका काम खराब होता . वह बिगड़ता है।

कल्लो० : (घबराकर) अब मुझे क्या मालूम था, कि वह अपना परीक्षा-फल देखने जा रहा है ?

सूरदास : चलो, अब चिन्ता करने से क्या होता है ? भगवान् भला करेगा, और वह पास हो जायगा।

[कल्लो की माँ सोचती है, और जवाब नहीं देती।]

सूरदास : कल्लो की माँ ! दीपक पास हो जाय, तो मैं एक सौ एक रुपया गरीबों में बाँटूँगा।

[कल्लो की माँ चुप रहती है।]

सूरदास : अच्छा कल्लो की माँ ! तुम्हें मालूम है, दीपक आजकल सारा दिन कहाँ गायब रहता है ?

कल्लो० : मुझे क्या मालूम, कहाँ रहता है ? आप तो उसे कुछ कहते ही नहीं। जहाँ चाहे, जाए; जो चाहे, करे।

सूरदास : आज आने दे। ऐसा डाँटूँगा कि याद ही रखे।

कल्लो० : आज उसे डाँटेंगे ? डाँट चुके आप ! आप में डाँटने का बूता ही नहीं।

सूरदास : यह तो ठीक है। वह एक बार 'दादा' कह देता है, मेरा सारा क्रोध पानी हो जाता।

कल्लो० : मेरा भी तो यही हाल है। वह ज़रा-सा मुँह मैला कर ले, फिर मुँह से बात ही नहीं निकलती। सारा क्रोध जाने कहाँ चला जाता है ?

सूरदास : तो कल्लो की माँ ! तुम ही बताओ, क्या करें ?

कल्लो० : मैं बताऊँ ? (निकट जाकर) अब उसका ब्याह कर दीजिए। सब ठीक हो जाएगा।

सूरदास : (मुस्कराकर) यह तो मैं भी सोच रहा था, मगर पहले कोई बहू बताओ।

कल्लो० : बहू दीपक ने पसंद कर ली है।

सूरदास : (चौंककर) अरे ! क्या सचमुच ? कैसी है ?

कल्लो० : भले घर की है पढ़ी-लिखी है, खूबसूरत है।

सूरदास : भगवान् ! क्या तू मेरी आँखें दो घड़ी के लिए नहीं खोल सकता ? एक बार देख लूँ कि मेरे दीपक की बहू कैसी है ?

कल्लो० : सूरदास। जी न छोटा करो।

सूरदास : कल्लो की माँ, दीपक की बहू तुमने देखी है ?

कल्लो० : तसवीर देखी है।

[सूरदास सोचता है। दरजी आकर दरवाज़े में खड़ा हो जाता है।]

कल्लो० : आपने फिर दरजी को बुलाया है ?

सूरदास : दीपक कहता था, दो नए सूट...

कल्लो० : मैं कहती हूँ, अब दीपक के सूटों का ख्याल छोड़िए और बहू के लिए साड़ियाँ खरीदिए।

सूरदास : (खुश होकर) कल्लो की माँ ! मैं अभी जाता हूँ ।

[सूरदास उठकर खड़ा हो जाता है ।]

दरजी : और मुझे क्या हुक्म है ?

कल्लो० : तुम दो-चार दिन के बाद आना । अब तो बहुत-सा काम निकलने वाला है ।

[परदा गिरता है ।]

दूसरा अंक : छठा दृश्य

स्थान—रास्ता

समय—दिन के चार बजे

[कुछ विद्यार्थी टेनिस के रैकट लिये हुए आते हैं।]

एक विद्यार्थी : यार ! उसके सितारे बड़े ज़बरदस्त हैं।

दूसरा विद्यार्थी : तो तुम्हें आशा नहीं थी, कि वह यूनिवर्सिटी में प्रथम रहेगा ? सितारे अच्छे थे, प्रथम रह गया !

तीसरा : (पहले से) तुम दीपक की प्रशंसा नहीं करते, उसके सितारों की प्रशंसा करते हो !

पहला : मेरा यह मतलब नहीं था।

दूसरा : मतलब क्यों नहीं था ? द्वेषाग्नि में फुँके जाते हो ! कहने लगे, मतलब नहीं था।

तीसरा : सच्ची बात तो यह है, कि दीपक में योग्यता भी है, परिश्रम भी है।

दूसरा : और भलमनसाहत भी है। (पहले से) क्यों दोस्त ! क्या राय है तुम्हारी ?

पहला : भाई ! तुम हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गए, जैसे मैं दीपक का दुश्मन हूँ।

दूसरा : दुश्मन तो नहीं हो मगर उससे जलते जरूर हो। उसकी खुशी से तुम्हें खुशी नहीं होती। उसके दुःख से तुम्हें दुःख नहीं होता। उसकी तारीफ सुनकर तुम्हारा मुँह फीका पड़ जाता है। और तुम्हारी आँखों में तेज नहीं रहता। तुम उसकी बुराई चाहते हो।

[एक तरफ देखता है।

तीसरा : क्या है यार ?

दीपक : अरे भाई ! क्या कभी यह भी सम्भव है कि कोई न केवल

दूसरा : दीपक आ रहा है। घर जाने के कष्ट से बच गए। यहीं बधाई दे देंगे।

[दीपक का प्रवेश]

पहला : (आगे बढ़कर और हाथ मिलाकर) भाई ! बहुत-बहुत Congratulations[1] तुमने कॉलेज का सिर ऊँचा कर दिया, और हमें खुशी हुई।

दीपक : (झूठी हँसी से) Thank you.[2]

दूसरा : (हाथ मिलाकर) अब जलसा कब मिलेगा ? यह बताओ।

दीपक—तुम्हारे यहाँ मिठाई खा चुकने के बाद।

तीसरा : (चिल्ला कर) दुहाई राम की ! यह कभी नहीं हो सकता। हम सिर्फ पास हुए हैं, तुम यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम आए हो जलसा तुम्हें देना होगा, हमें नहीं। अगर न दोगे, तो यह अन्याय होगा, जुल्म होगा, अँधेर होगा।

पहला : हम पास हुए हैं मगर रेंगकर। तुम पास हुए हो, उड़कर। तुमको feast[3] देनी होगी ! इसके बिना छुटकारा नहीं।

दूसरा : ये न देंगे तो हम इनके पिताजी को जा पकड़ेंगे।

दीपक : (बुझे हुए मन से मुस्कराने का यत्न करते) उनको चाहे पकड़ो, चाहे न पकड़ो, वे feast अपने आप देंगे और पीछे पड़कर देंगे।

दूसरा : शरीफों की यही निशानी है।

पहला : मगर यार ! तुम आज खुश नजर नहीं आते। क्या बात है ? बताओ।

दीपक : तुम तो पागल हो ? तुम्हें वहम हो गया है।

पहला : (दूसरे से) जरा महाशयजी की आँखें देखो। है कहीं खुशी की चमक ? सच बताना ?

---

१. बधाई।　　२, धन्यवाद　　३. भोज।

पास हो, बल्कि यूनिवर्सिटी में सर्वप्रथम रहे, और फिर भी खुश न हो, बल्कि उदास हो ? और फिर उसी दिन, और यह खबर सुनने के एक-दो घण्टे बाद ! मैं कहता हूँ देखो—

तीसरा : अच्छा देखते हैं। (दीपक से) जरा हँसो तो—

दीपक : तुम चाहते हो, मैं पागल हो जाऊँ ?

दूसरा : अगर तुम आज भी पागल नहीं हो जाते, तुम आदमी नहीं हो।

दीपक : तो हम क्या हैं ?

तीसरा : या इस दुनिया के पत्थर, या उस दुनिया के देवता।

[सब मित्र हँसते हैं]

पहला : (दूसरे से) देखिए ! अब इनकी—मेरा मतलब है मिस्टर दीपक की—आँखें चमकेंगी।

दूसरा और तीसरा : हम सूत्र नहीं समझते, भाष्य करो। अब इनकी आँखें क्यों चमकेंगी ?

पहला : (इशारा करके) इसलिए कि मिस रूपकुमारी आ रही हैं। समझ गए आप हमारी बात ?

[दीपक घबराता है।]

दीपक : तो भाई ! मुझे आज्ञा दो। एक बड़ा जरूरी काम याद आ गया है।

[दीपक जाना चाहता है।]

तीसरा : (दीपक का हाथ पकड़ कर) क्यों भाई ! क्या मिस रूप-कुमारी से बोल-चाल बन्द है आजकल ?

दीपक : नहीं तो !

[हाथ छुड़ाना चाहता है।]

तीसरा : तो फिर जरा ठहरो। एक बधाई और बटोर लो। आज तुम्हारे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन है।

दीपक : (भर्राई हुई आवाज़ से) नहीं भाई ! तुम नहीं जानते। आज

मेरे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन नहीं, दुःख का सब से बड़ा दिन है।

[दीपक हाथ छुड़ाकर भाग जाता है। तीनों मित्र आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखते हैं। रूपकुमारी प्रवेश करती है। तीनों मित्र हाथ बाँध कर नमस्ते करते हैं।]

एक विद्यार्थी : मिस रूप ! आपने सुना ? बी. ए. का परीक्षा-फल निकल गया !

रूप० : और मैंने यह भी सुना, कि आप तीनों दोस्त पास हो गए हैं। बधाई हो। Congratulations.

तीनों : Thank you, मिस रूपकुमारी !

एक : मिस्टर दीपक यूनिवर्सिटी भर में अव्वल रहे।

रूप० : आज उनके पिता कितने खुश होंगे, क्या आप यह सोच भी सकते हैं ? बधाई देने गई थी, तो खुशी के मारे उनके मुँह से आवाज़ न निकलती थी। आज मैंने उन अँधी आँखों से प्रेम के आँसू बहते देखे हैं। कहते थे, आज मेरे जीवन में खुशी का सब से बड़ा दिन है।

दूसरा : मगर दीपक कहता था, आज उसके जीवन में दुःख का सब से बड़ा दिन है। क्या आप बता सकती हैं कि इसका क्या मतलब है ?

रूप० : (घबराकर) आपसे उनकी कहाँ और कब मुलाक़ात हुई थी ?

तीसरा : अभी तो यहाँ हमारे पास खड़ा था। इधर गया है।

रूप० : तो मुझे आज्ञा दीजिए। मैं कहीं बधाई देने में सब से पीछे न रह जाऊँ।

[रूपकुमारी का जल्दी से प्रस्थान]

तीसरा : (पहले से) कुछ समझे ?

पहला : (सिर हिलाकर) बिल्कुल नहीं।

दूसरा : अगर इस घोंघे में इतनी बुद्धि होती तो यूनिवर्सिटी में अव्वल न रह जाता। दीपक रूप से खफ़ा है और रूप उसे मनाने गई है।

[सब का प्रस्थान]

●

दूसरा अंक : सातवाँ दृश्य

स्थान—गंगा का किनारा

समय—दिन के साढ़े चार बजे

[दीपक और रूपकुमारी बातें करते हुए प्रवेश करते हैं। दीपक कुछ खफ़ा-सा है। रूपकुमारी कुछ परेशान-सी है।]

दीपक : (इधर-उधर देखकर) आख़िर पता तो लगे, कि हम कहाँ जा रहे हैं ?

रूप० : कहीं भी नहीं जा रहे हम !

दीपक : फिर भी...

रूप० : (दीपक को वृक्ष के एक टूटे हुए तने पर बिठाकर) यहाँ बैठ जाओ।

[रूपकुमारी स्वयं सामने पड़े हुए दूसरे तने पर बैठ जाती है।]

रूप० : क्या आनन्द के अवसर पर आदमी को साधारण सभ्यता की मर्यादा भी भूल जाती है ?

दीपक : (रुखाई से) मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

रूप० : मतलब यह है कि मैंने तुम्हें बधाई दी थी, तुमने मुझे धन्यवाद भी नहीं कहा। ठीक है, अब तुम बड़े आदमी हो गए हो, तुम्हें हम ग़रीबों की क्या परवाह है ?

दीपक : मैं एक बात कहूँ ?

रूप० : एक नहीं, दो कहिए।

दीपक : तुम समझ में न आनेवाली एक पहेली हो। कल साँझ को तुमने मुझे (जेब में पत्र निकालकर) यह पत्र लिखा था। आज तुम

फिर उसी तरह हँस-हँसकर बातें कर रही हो, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

[रूपकुमारी जवाब नहीं देती।]

दीपक : यह पत्र मुझे मिल गया है, और मैंने इसे पढ़ लिया है, और मैंने इसका मतलब समझ लिया है।

• [रूपकुमारी चुप रहती है।]

दीपक : मगर मुझे आश्चर्य है कि तुमने मुझे यह पत्र क्यों लिखा? मेरा ख्याल है, मेरा कोई दोष नहीं है।

रूप० : (सिर झुकाकर धीरे से) ठीक है!

[रूपकुमारी ठंडी आह भरती है और उठकर परे चली जाती है। दीपक समझता है, उसके प्रश्न ने रूपकुमारी का दिल दुखा दिया है। वह भी उठ कर उसके पास चला जाता है और क्षमा माँगता है।]

दीपक : मिस रूप! अगर मेरी बात से तुम्हारा दिल दुखा हो, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। मेरा यह मतलब न था। मैं फिर क्षमा माँगता हूँ।

रूप० : (सजल नेत्रों से) तुम्हें मुझसे क्षमा माँगने की क्या पड़ी है? तुम मुझे बातों के तीर मारो। तुम्हें क्या मालूम, मेरे दिल पर क्या बीत रही है? तुम क्या जानो मैं रात-भर किस तरह जागती रही हूँ?

दीपक : मगर इसमें मेरा क्या दोष है? मुझे बताओ, मैं क्या कर सकता हूँ? और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं वह करूँगा।

रूप० : कदाचित् तुम्हें मालूम होता कि मुझे किस तरह विवश किया जा रहा है!

दीपक : किस बात के लिए विवश किया जा रहा है?

रूप० : (ज़मीन की तरफ़ देखते हुए) अब क्या बताऊँ, किस बात के लिए विवश किया जा रहा है? (ठण्डी आह भरकर) भगवान किसी को स्त्री न बनाए।

दीपक : (एकाएक चौंककर) शायद मिस्टर भंडारी......... मैं भी कैसा मूर्ख हूँ, जो इतना भी नहीं समझता।

[दीपक धीरे-धीरे जाकर एक पेड़ से पीठ लगा कर खड़ा हो जाता



है, और अपने आप बोलता जाता है। मगर उसका मतलब यह है कि रूपकुमारी उसकी बातें सुन ले।]

दीपक : किसी समय स्त्री का संसार प्रेम और पवित्रता का संसार था। मगर आजकल पढ़ी-लिखी स्त्रियों के संसार में सिंगार और साड़ियाँ हैं, बँगले और बहारें हैं, शान और शोभा है, मगर प्रेम और बलिदान नहीं है। पहले की स्त्री कुछ नहीं चाहती थी, सिर्फ़ प्रेम चाहती थी; आज की स्त्री सब कुछ चाहती है, सिर्फ़ प्रेम नहीं चाहती। उसके लिए प्रेम एक बेकार चीज़ है।

रूप० : (आगे बढ़कर) क्या तुम मेरी बात पर विश्वास करोगे ?

दीपक : (गंभीरता से) कहो। मैं तुम्हारी हर बात पर विश्वास करूँगा।

रूप० : तुम पुरुष दुनिया भर की पुस्तकें पढ़ सकते हो, मगर नारी-हृदय नहीं पढ़ सकते।

दीपक : मगर चिट्ठियाँ तो पढ़ सकते हैं !

रूप० : यह चिट्ठी मैंने अपने आप, अपनी मरज़ी से नहीं लिखी थी, मुझसे लिखवाई गई थी।

दीपक : (खुश होकर) तो यह तुमने नहीं लिखी थी ? रूप ! यह तुमने अपने आप नहीं लिखी थी ?

रूप० : (एक ही समय में हँसते और रोते हुए) नहीं।

दीपक : तो मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें ग़लत समझा था। मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। मगर एक बात और बता दो। तुमसे यह चिट्ठी क्यों लिखवाई गई ? तुम्हारी माँ को मुझसे क्या शिकायत है ? उसने मुझमें क्या अवगुण देखा है ?

रूप० : बता दूँगी। मगर आज नहीं, फिर किसी दिन। आज मेरे मन से बोझ उतरा है, आज मैं तुम्हारे मन पर बोझ नहीं डालना चाहती। यह अनर्थ होगा। मैं अनर्थ न करूँगी।

[दीपक उसे उस पेड़ के तने पर बिठा देता है, जहाँ उसे पहले

रूपकुमारी ने बिठाया था, और आप उसके सामने बैठ जाता है]

दीपक : तुम्हारे मन से बोझ उतर गया है, तो मेरे मन से भी बोझ उतारो।

रूप० : आज नहीं, कल।

दीपक : (आग्रह से) कल नहीं, आज! नहीं इसी समय। बोलो, बताओ। मेरा दिल दुखी है।

रूप : मैं कहती हूँ, मेरा आज का दिन खराब न करो।

दीपक : मैं भी कहता हूँ, मेरा आज का दिन खराब न कर। आज का दिन बड़ा क़ीमती है।

रूप० : (संकोच से) अच्छा ! माँ जी कहती थीं, कि वह...

दीपक : वह कौन ?

रूप० : (रुक रुककर) वे...कहती थीं, कि तुम...

दीपक : हाँ हाँ बोलो...मैं क्या ?

रूप० : वे कहती थीं कि तुम...(फिर रुक जाती है।)

दीपक : यह कि मैं सूरदास की संतान हूँ। संसार चाहे जो कुछ कहे, मगर मैं सच कहता हूँ कि सूरदास जैसा नेक, सच्चा, खरा, प्यार करनेवाला बाप बहुत कम लोगों को मिला होगा। मुझे सूरदास का बेटा होने पर गर्व है। और वह देवता है।

रूप० : मगर वे कहती हैं, वे तुम्हारे पिता नहीं हैं।

दीपक : (चौंककर) क्या ? वे मेरे पिता नहीं हैं ! मैं उनका पुत्र नहीं हूँ ?

रूप : मगर मेरा मन कहता है कि यह सब झूठ है।

दीपक : क्या यह हो सकता है कि जिस आदमी को मैं आज तक अपना पिता जानता, मानता, समझता रहा हूँ, वह मेरा पिता न हो ? तो फिर मैं किसका पुत्र हूँ ? क्या इस संसार में यह भी सम्भव है ? क्या इस दुनिया में यह भी हो सकता है ?

रूप० : मैं कहती हूँ—तुम उन्हीं के पुत्र हो !

दीपक : (सुना अनसुना कर के) मगर दुनिया ने इससे भी अद्भुत बातें देखी हैं। यह असम्भव नहीं कि वे मेरे पिता न हों। तो ऐसी अवस्था में...

[दीपक सोचने लगता है]

रूप० : मेरा ख्याल है, मेरी माँ को किसी ने धोखा दिया है।

दीपक : (दुविधा को दूर हटाकर निश्चयात्मक रूप से) सुनो रूप ! (रूप दत्तचित्त हो जाती है।) मैं जानता हूँ कि यह मेरे किसी शत्रु की शरारत है। मगर फिर भी जब किसी ने तुम्हारे और तुम्हारी माँ के मन में यह संदेह बिठा दिया है, तो इसे दूर करना मेरा कर्त्तव्य है। और इसे दूर करने की एक ही विधि है कि मैं अपने बाप से जाकर पूछूँ कि तुम ही मेरे बाप हो या नहीं ? अभी फ़ैसला हो जाएगा।

[दीपक उठ कर खड़ा हो जाता है।]

रूप० : मगर मुझसे प्रतिज्ञा करो। (उठ खड़ी होती है।)

दीपक : (मुस्कराकर) बहुत अच्छा ! लो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि अगर मैं उनका पुत्र न निकला, तो मैं गंगा में डूबकर आत्म-हत्या न करूँगा, स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हें सब-कुछ अपने मुँह से बता दूँगा। मगर सवाल यह है कि मैं तुम्हें कहाँ मिल सकूँगा ?

रूप० : (मतलब समझकर) मैं अपने मकान के साथवाले बग़ीचे में हूँगी।

[दोनों चलते हैं।]

रूप० : मेरी एक प्रार्थना है। क्या मेरा पत्र मुझे लौटाया जा सकता है ?

दीपक : (पत्र देकर) मगर क्या करोगी तुम इससे ?

रूप० : (पत्र फाड़कर फेंक देती है) कुछ नहीं।

दीपक : अफ़सोस, हमारे पहले प्रेम-पत्र का यह परिणाम !

रूप० : प्रेम-पत्र का यह परिणाम न होता, तो यह परिणाम हमारे प्रेम का होता। अब काग़ज़ फटा है, तब दिल फटते।

दीपक : तुम्हें भय था कि मैं वह पत्र किसी को दिखा न दूँ।

रूप० : (मुस्कराकर) तुम्हें भय रहता कि यह पत्र कोई देख न ले।

[दोनों चले जाते हैं। वृक्षों के पीछे से दो जासूस निकलते हैं।]

एक : अब तो तुमने लड़की के मुँह से भी सुन लिया। अब बोलो, क्या ख्याल है तुम्हारा ?

दूसरा : भाई ! मान लिया तुम्हारा ख्याल ठीक है। मगर यह राय बहादुर हीरालाल का बेटा है, इसका क्या प्रमाण है ?

पहला : इसका प्रमाण भी मिल जाएगा। ये काग़ज़ के टुकड़े उठा लो।

दूसरा : क्या करोगे ?

पहला : शायद किसी काम आएँ।

[दोनों का प्रस्थान]

दूसरा अंक : आठवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास के घर के पास बाज़ार

समय—संध्या-काल

[सूरदास और भंडारी साहब]

भंडारी : सूरदास ! आज तुमने बहुत रुपया दान किया।

सूरदास : नहीं भाई ! बहुत दान तो नहीं किया। और मैं ग़रीब आदमी बहुत दान कर भी क्या सकता हूँ ? मुझे भगवान् ने खुशी दी है, मैंने सोचा, चलो मैं भी थोड़ी-सी खुशी चार आदमियों में बाँट दूँ। आप नहीं जानते, आज मैं कितना खुश हूँ, आज मेरी खुशी मेरे मन में नहीं समाती। आज मेरा संसार नाच रहा है। आज मेरे दीपक ने संसार में मेरा सिर ऊँचा कर दिया है।

भंडारी : इसमें क्या शक है ! मेरा मतलब है तुम्हारा दीपक बड़ा होनहार है। उसने अव्वल रह कर परीक्षा पास की है।

सूरदास : मगर अभी बड़ी परीक्षाएँ तो आगे आनेवाली हैं। चार दिन के बाद उसका ब्याह होगा, अगर उस समय वह नेक पति बने, तो मैं समझूँगा, वह परीक्षा में पास हुआ। चार साल के बाद उसके यहाँ सन्तान होगी, अगर उस समय वह सहनशील पिता बने, तो मैं जानूंगा कि मेरा परिश्रम सफल हुआ। जीवन के क्षेत्र में पग-पग पर पाप के प्रलोभन सुन्दर रूप धारण करके उसके सामने आएँगे, मगर उस समय वह उसको पाँव-तले मसल सके, तो मैं कहूँगा कि वह वीरात्मा है और जीवन-परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। उन बड़ी परीक्षाओं के सामने यह परीक्षा तो बहुत छोटी है।

[जासूस आकर एक तरफ छुप जाते हैं।]

भंडारी : सूरदास ! मैं समझता था, तुम सिर्फ रागी और अभिनेता हो, मगर आज पता लगा कि तुम तत्ववेत्ता भी हो। जब मैं इंग्लैंड में था तो मैंने वहाँ भी तुम जैसा एक आदमी देखा था। मगर उसके बेटे ने तो बाप से बुरा बर्ताव किया था।

सूरदास : मगर भाई ! मेरा दीपक तो ऐसा लड़का नहीं, जो मेरे साथ बुरा बर्ताव करे।

भंडारी : तुम्हारा दीपक तो हीरा है, सूरदास हीरा !

एक जासूस : (दूसरे से धीरे से) सुना ? हीरालाल का नाम ले रहा है।

दूसरा : (धीरे से) वह हीरा कह रहा है, हीरालाल नहीं कह रहा।

[कई आदमियों का एक साथ प्रवेश]

दो आदमी : सूरदास, बधाई हो भाई !

सूरदास : तुम्हें भी बधाई हो भाई ! दीपक जितना मेरा बेटा है, उतना तुम्हारा भी है।

[जासूस एक दूसरे की तरफ अर्थपूर्ण दृष्टि से देखते हैं।]

तीसरा : हम तो सुनकर निहाल हो गए, सूरदास ! छाती फूल गई। सिर ऊँचा उठ गया।

दूसरा : सचमुच हम निहाल हो गए।

सूरदास : तुम निहाल न होंगे, तो और कौन होगा ? यह सब तुम्हारे ही पाँव की बरकत है।

तीसरा : जानते हो, हम क्यों आए हैं ?

चौथा : हम जलसा माँगने आए हैं।

पहला : बोलो कब दोगे ?

दूसरा : टालने से काम न चलेगा। इतना पहले समझ लो।

सूरदास : नहीं भैया ! टालने की कौन-सी बात है ? जब चाहो, ले लो। भगवान् ने ऐसा अवसर दिया है, तो क्या मैं पीछे हट जाऊँगा ?

बड़े शौक से जलसा लो भाई ! यह तो मेरा सौभाग्य है। आदमी ऐसे जलसे हर रोज देता रहे।

भंडारी : हमें भी याद रखना सूरदास जी। कहीं भूल न जाना। नहीं तो हमें सारी उमर शिकायत रहेगी।

सूरदास : नहीं भैया ! तुम्हें कैसे भूल जाऊँगा ? मगर एक बात है, मैं अंधा आदमी ! मुझ से तो यह प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। रुपया मुझसे लो, प्रबन्ध आप करो। मंजूर ?

भंडारी : मंजूर ! प्रबन्ध मैं करूँगा। मुझे खुशी होगी।

पहला : तो कब ? आज या कल ? मेरा तो विचार है, आज ही कर दो। तुरन्त दान—महा कल्याण।

सूरदास : भाई ! आज तो कठिन है। अभी दीपक घर नहीं आया। कहीं यार-दोस्तों ने घेर लिया होगा। आता है, तो उसके साथ सलाह करके आपको सूचना दे दूँगा। उसके दोस्तों और कॉलेज के प्रोफ़ेसरों को भी बुलाना होगा। और मेरी कम्पनी के आदमी भी तो आएँगे। इसलिए आज नहीं हो सकता। क्यों भाई ?

तीसरा : ठीक है, आज नहीं हो सकता। कल या परसों पर रखो, ताकि सब लोग आ सकें और दिल के हौसले पूरे हों।

सूरदास : अच्छा भाई ! (हाथ बाँधकर) आप लोगों ने बड़ी कृपा की। आपका धन्यवाद। अब चलता हूँ।

भंडारी : हाँ, सूरदास। तुम चलो। आज तुम्हारी बधाइयाँ बटोरने का दिन है। मगर दीपक से मुलाकात न हुई।

सूरदास : (जाते-जाते) कल होगी।

[सूरदास चला जाता है। भंडारी उसकी तरफ़ देखता रहता है।]

भंडारी : (मुड़कर) खूब आदमी है। आपने देखा ? आज कितना खुश है।

पहला : फूला नहीं समाता।

दूसरा : बेटे पर जान देता है।

भंडारी : एक दूसरे अंधे हैं, जो माँग-माँगकर खाते हैं, और समाज का भार बने हुए हैं। एक यह अंधा है, जो जीवन-क्षेत्र में सूरमा सिपाही के समान वीरता से लड़ रहा है और अपने बेटे को पालने के लिए बुढ़ापे में भी इतना काम कर रहा है। अपने कर्त्तव्य का जितना इसे ध्यान है, उतना ध्यान अगर सभी को हो, तो संसार स्वर्ग-धाम बन जाए, और दुनिया से दुखों का नाम-निशान भी मिट जाए। यह आदमी नहीं, यह एक संदेशा है, यह एक आदर्श है, यह एक संस्था है। देश और जातियाँ ऐसे जीवों पर गर्व करती हैं।

[सब का प्रस्थान]

दूसरा अंक : नौवाँ दृश्य

स्थान—सूरदास का घर

समय—रात

[सूरदास साड़ियों के ढेर के पास एक आराम-कुरसी पर बैठा साड़ियों को टटोल-टटोल कर देख रहा है और अपना पुराना गीत-गाकर खुश हो रहा है ।]

गीत

तेरी गठरी में लागा चोर, मुसाफिर जाग ज़रा, जाग ज़रा!
नींद में माल गँवा बैठेगा,
अपना आप लुटा बैठेगा,
फिर पीछे कुछ नहीं बनेगा, लाख मचावे शोर ।
मुसाफ़िर जाग ज़रा, जाग ज़रा !

कल्लो की माँ का प्रवेश]

कल्लो की माँ—यह आज इतना पुराना गीत आप क्या ले बैठे हैं ? छोड़िए इसे ।

सूरदास : कल्लो की माँ ! आज मुझे बीस साल पहले का वह दिन याद आ रहा है, जब मुझे दीपक घाट पर पड़ा मिला था । या यूं समझ लो, जब दीपक को मैं घाट पर मिला था । मुझे अच्छी तरह याद है, उस दिन मैं यही गीत गा रहा था, मानो इसी गीत ने मुझे दीपक दिया था ! आज दीपक ने बी. ए. की परीक्षा पास की है, आज मैंने दीपक के ब्याह की तैयारियाँ शुरू की हैं, आज मेरे मन ने कहा—वही गीत गाओ, और मैं वही गीत गाने लगा । आज मैं बहुत खुश हूँ । आज मेरी खुशी गीत गा रही है ।

कल्लो० : यह गीत न गाइए। इसे सुनकर मेरे मन में हौल उठने लगता है। कोई और गीत गाइए, जिससे खुशी और आनन्द हो। यह गीत ठीक नहीं है।

सूरदास : मैं सोचता हूँ, अगर उस दिन इसे मैं न उठा लाता; तो मैं आज तक वहीं बैठकर भजन गाता रहता, रात को मज़े से वहीं सो रहता, और उन तमाम झंझटों से बचा रहता, जो आज मुझे घेरे हुए हैं। उस दिन इसे मैंने उठा लिया, और गृहस्थ जीवन ने मुझे पकड़ लिया। मगर मैं पछताता नहीं हूँ, क्योंकि यहाँ भी मुझे कठिनाइयों से लड़ना पड़ता है। और इस लड़ाई में भी आनन्द है, और इससे भी आदमी का जीवन ऊँचा उठता है।

कल्लो की माँ : और मैं सोचती हूँ, अगर उस दिन उसे आप न उठा लाते, तो उसका क्या हाल होता ? आपने उसे बचा लिया ! वर्ना घाट पर ठंड थी, बैल थे, गीदड़ थे।

सूरदास : नहीं कल्लो की माँ आदमी कुछ नहीं कर सकता, जो कुछ करता है परमात्मा करता है। यह परमात्मा की लीला है। परमात्मा का शुक्र करो।

[सूरदास साड़ियों पर हाथ फेरने लगता है। दीपक आकर एक कोने में छिप जाता है, और बातें सुनता है।]

सूरदास : कल्लो की माँ ! तुम चुप क्यों हो गई (तुम क्या सोच रही हो ?

कल्लो : मैं सोच रही हूँ, कि अब जब दीपक से ब्याह की बातचीत शुरू होनेवाली है, तो उसके माँ-बाप का सवाल उठना जरूरी है।

[दीपक चौकन्ना हो जाता है।]

सूरदास : क्या मतलब ?

कल्लो : मेरा यह मतलब है, कि क्या आप कह सकेंगे कि दीपक आपका बेटा है ?

सूरदास : मैं साफ़ कह दूँगा कि मुझे घाट पर पड़ा मिला था! मैंने उठा लिया।

[दीपक के मुँह का रंग उड़ जाता है।]

सूरदास : और मैं साफ़ कह दूँगा कि दीपक मेरा पाला हुआ है।

कल्लो० : तो यह सम्बन्ध हो चुका!

सूरदास : क्यों कल्लो की माँ! इसमें क्या हर्ज़ है?

कल्लो० : बहुत हर्ज़ है। माँ-बाप, जात-पात, घर-बार के पते बिना कौन अपनी बेटी ब्याह देगा? ज़रा सोचिए! और फिर दीपक का क्या हाल होगा?

[दीवार-घड़ी साढ़े आठ बजाती है।]

कल्लो० : लो बातों ही बातों में आपके थियेटर जाने का समय हो गया। खाना ले आऊँ?

सूरदास : (गहरे विचार में डूबे हुए) ले आओ।

[कल्लो की माँ खाना लेने जाती है। दीपक धीरे-धीरे सूरदास से पास आकर खड़ा हो जाता है और भर्राई हुई आवाज़ में सूरदास से कहता है—]

दीपक : दादा!

सूरदास : (चौंककर) कौन? दीपक! तुम इस समय तक कहाँ थे? क्या तुम्हें मालूम है, तुम बी.ए. में सारे प्रांत में अव्वल रहे हो। आओ मेरे निकट आओ। यहाँ बैठ जाओ! बेटा, आज मैं बड़ा ख़ुश हूँ। (गद्‌गद् होकर) आज मैं बड़ा ख़ुश हूँ बेटा!

दीपक : (उदासी से) दादा!

सूरदास : पहले मेरे पास आकर मेरी एक बात सुन लो!

दीपक : पहले मेरी बात, दादा!

सूरदास : (एक साड़ी उठाकर) देखो यह क्या है?

दीपक : मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ।

सूरदास : (साड़ी रखकर) अच्छा पूछो—क्या पूछते हो तुम?

दीपक : मैं पूछता हूँ ? मैं क्या आप ही का बेटा हूँ ?

सूरदास : (चौंककर) बेटा ! यह तुम आज मुझसे क्या पूछ रहे हो ? क्या तुम्हें कुछ संदेह है ?

दीपक : हाँ, मुझे संदेह है । इसीलिए पूछता हूँ, साफ़-साफ़ कहिए, क्या मैं आप ही का बेटा हूँ...

सूरदास : (भरी हुई आवाज़ में) यह तो सारी दुनिया जानती है बेटा !

दीपक : और आप ही मेरे पिता हैं ?

सूरदास : यह तुम भी जानते हो।

दीपक : मगर यह झूठ है ।

सूरदास : (हताश होकर)—दीपक, सुनो ।

दीपक : आप सच क्यों नहीं कहते ? आप झूठ बोल रहे हैं ।

सूरदास : (हाथ फैलाकर) दीपक ! आज तुम्हें क्या हो गया है । आज तुम कैसी बातें कर रहे हो ? ऐसी बातें तुमने आज तक न की थीं ।

दीपक : अभी-अभी आप कल्लो की माँ से बातें कर रहे थे, वे मैंने सुन ली हैं । फिर आप मुझे अब भी क्यों धोखा दे रहे हैं ? धोखा देने का समय चला गया ।

[सूरदास निरुत्तर होकर थोड़ी देर के लिए चुप रह जाता है । इसके बाद ठंडी साँस भरता है और एक पग आगे बढ़ता है ।]

सूरदास : तो तुमने सब कुछ सुन लिया है—अच्छा पूछो । अब मैं तुम्हारे हर एक प्रश्न का उत्तर देने को तैयार हूँ । अब मैं तुम से कोई बात न छिपाऊँगा । मगर बेटा ! सच देखने के लिए पत्थर की आँखों की, और सच सुनने के लिए लोहे के दिल की ज़रूरत है । पहले सोच लो ! क्या तुम सच सुन सकोगे ?

दीपक : आज मैं सब कुछ सुन सकूँगा ।

सूरदास : तो पूछो, क्या पूछते हो ?

दीपक : मैं कौन हूँ ?

सूरदास : भगवान् जानता है, मैं कुछ नहीं जानता !

दीपक : और मेरे माता-पिता कौन हैं ?

सूरदास : मैं यह भी नहीं जानता।

दीपक : और मेरी जाति क्या है ?

सूरदास : (सिर झुकाकर) मैं यह भी नहीं जानता।

दीपक : (ज़रा क्रोध से) तो वह बात आपने इतने साल तक मुझसे क्यों छिपाये रखी ? आप तो कहा करते थे कि तेरी माँ ऐसी थी, और वैसी थी। और आपने सदा मुझे यही बताया है कि मैं आपका बेटा हूँ।

सूरदास : (दीपक की बात का उत्तर न देकर) बीस साल गुज़रे, एक दिन साँझ के समय गंगा के घाट पर एक बच्चा पड़ा था। उसे एक अन्धे के प्यार ने उठाया, वह अंधा सूरदास है।

दीपक : (भर्राई हुई आवाज़ में) तो मैं अनाथ हूँ ?

सूरदास : (व्याकुल होकर) नहीं मेरे बच्चे ! तू अनाथ नहीं है। तू अपने आपको अनाथ क्यों कहता है ? अभी तेरा अन्धा बाप जीता (हाथ फैलाकर आगे बढ़ता है।) दीपक।

दीपक : (हवा में देखते हुए) एक घण्टे पहले तक मैं भी यही समझता था, मगर अब—मेरा कोई बाप नहीं है, मेरी कोई माँ नहीं है, मेरी कोई जाति नहीं है। मैं संसार की भीड़ में अकेला और पराया हूँ। मेरा अपना कोई नहीं।

सूरदास : (टूटे हुए साहस से) यह न कह दीपक ? यह न कह मुझसे।

दीपक : भगवान् जाने मेरे माता-पिता ने मुझे घाट पर क्यों फेंक दिया ! शायद उनके पास मेरे पालने के लिए धन न था। शायद उनके पास मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था...शायद मैं पाप की संतान हूँ।

सूरदास : (रुंधे हुए गले से) दीपक ! तू ऐसी हृदय-बेधक बातें

क्यों सोचता है ? तू मेरा बच्चा है । तू इस बाप के बुढ़ापे की लाठी है। और मैं तेरा बाप हूँ। मेरे पास बाप का प्यार है।

दीपक : (सूरदास के चरण छूकर) दादा !

सूरदास : (उदासी से) जीता रह बेटा !

दीपक : (भर्राए हुए गले से) नमस्कार दादा !

[सूरदास दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है। सूरदास घबराता है ।]

सूरदास : (रुँधे हुए गले से) दीपक !

दीपक : भगवान् से प्रार्थना कीजिए कि मुझे मेरा बाप मिल जाए, और मैं संसार में अनाथ न रहूँ, मैं दुनिया के सामने अपनी जाति लेकर खड़ा हो सकूँ।

[दीपक तेज़ी से बाहर निकल जाता है ।)

सूरदास : (हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए ।) दीपक ! क्या तू जा रहा है ? दीपक ? इधर आ ! मैं तेरा अन्धा बाप कहता हूँ, मेरे पास आ ! दीपक ! अरे नादान ! तू अपने बाप के प्यार को ठुकराकर बाप को ढूँढ़ने कहाँ जा रहा है ? दीपक (ज़ोर से) दीपक ! ज़रा ठहर— (जाकर अपने सन्दूक से कवच निकालता है ।) यह देख ! जिस दिन तू, मुझे मिला था, उस दिन तेरे गले में यह कवच पड़ा था । शायद इससे तुझे कुछ पता लग सके । ले देख ! तू बोलता क्यों नहीं ? क्या तू चला गया ? (कवच मेज़ पर रख देता है ।) दीपक ! (ज़ोर से) दीपक ! ! (और भी ज़ोर से) दी...प...क ! ! ! तू कहाँ है ? ज़रा इधर आ । ज़रा मेरी बात सुन । दीपक ! दीपक ! !

[जल्दी-जल्दी आगे बढ़ता है, और कुरसी से टकराकर गिर पड़ता है । कल्लो की माँ खाना लेकर आती है, और घबरा जाती है । वह खाना मेज़ पर रख देती है, और सूरदास को सँभालती है । सूरदास कराहता है ।]

कल्लो० : कितनी बार कहूँ कि ज़रा धीरे चला कीजिए, अब गिर पड़े न ! क्यों इतनी जल्दी चले थे ? चोट तो नहीं आई कहीं ?

सूरदास : (रोते हुए) कल्लो की माँ ! मैं गिरा नहीं हूँ। दीपक मुझसे गुस्से होकर चला गया।

कल्लो० : आपने कुछ कह दिया होगा। (कुरसी पर बिठा देती है।) बैठिए। आपने उसे क्या कहा, जो वह गुस्से होकर चला गया ?

सूरदास : मैंने कुछ नहीं कहा। वह कहता है, मैं अपने बाप को ढूँढूँगा।

कल्लो० : (आश्चर्य से चौंककर) तो क्या आपने उसे सब-कुछ कह दिया ? क्या कहने की ज़रूरत थी इस समय ? दो दिन चुप रहते, तो क्या हर्ज़ था ?

सूरदास : मैंने कुछ नहीं कहा। जब हम बातें कर रहे थे, वह छुपकर सब-कुछ सुन रहा था। जब तू खाना लेने गई, वह मेरे पास आया, और मुझे सब-कुछ बताना पड़ा। मगर कल्लो की माँ ! तू ही बता। मेरा इसमें क्या दोष है ? और तू ही बता, अब मैं क्या करूँ ?... (कराहकर) बता, मैं क्या करूँ ?

कल्लो० : करना क्या है ? चुप करके बैठे रहिए। जब उसके सिर से क्रोध का भूत उतर जाएगा तो अपने आप घर आ जाएगा।

सूरदास : नहीं, कल्लो की माँ ! मेरा मन कहता है कि वह अब घर नहीं आएगा।

कल्लो० : तो जाएगा कहाँ ? उसे बाप का जो प्यार यहाँ मिल सकता है, वह संसार में और कहीं नहीं मिल सकता।

सूरदास : कल्लो की माँ ! संसार में लोग स्त्री को चाहते हैं, बाल-बच्चों को चाहते हैं, खेल तमाशे को चाहते हैं। मगर बुड्ढे बाप के प्यार को कोई नहीं चाहता ! यह दुनिया में सबसे छोटी चीज़ है।

[बाहर मोटर के हॉर्न की आवाज़]

सूरदास : कौन है, कल्लो की माँ ?

कल्लो० : कम्पनी की गाड़ी आई है !

सूरदास : कम्पनी की गाड़ी लौटा दो, आज मैं नहीं जा सकता।

कल्लो० : क्यों नहीं जा सकते ?

सूरदास : अब मुझे नौकरी की क्या जरूरत है ? मेरा दीपक चला गया है। इसलिए गाड़ी को लौटा दो। कहो, अब मुझे गाड़ी न भेजा करें।

कल्लो० : (ज़रा क्रोध से) अरे बाबा। वह कहीं नहीं गया, और कहीं नहीं जा सकता। घंटे में लौट आयेगा। आप थिएटर जायँ, और अपना काम करें।

सूरदास : (आशापूर्ण स्वर में) तुम कहती हो, लौट आयेगा। (सोचकर) तुम ठीक कहती हो, वह ज़रूर लौट आयेगा। वह जानता है, कि अगर वह न लौट आया तो सूरदास रो रोकर मर जायेगा। और वह यह भी जानता हैं, कि आज सूरदास का खुशी का दिन है, आज उनके रोने का दिन नहीं, वह इतना निष्ठुर नहीं है। वह मेरी ख़ुशी को ख़राब नहीं करेगा। वह आएगा ! तू ठीक कहती है।

[एक पड़ोसी का प्रवेश]

सूरदास : कौन है भाई ?

पड़ोसी : सूरदास जी ! बधाई हो।

सूरदास : काहे की बधाई, भाई ?

पड़ोड़ी : अरे ! अब क्या यह भी कहना होगा ?

सूरदास : (कड़ककर) तुम मुझे काहे की बधाई देने आये हो ?

पड़ोसी : वाह ! दीपक के पास होने की।

सूरदास : (टूटे हुए दिल से) तुम्हें भी बधाई हो भाई ! मगर...

पड़ोसी : (घबड़ाकर) क्यों सूरदास ?

सूरदास : (अपने को सँभालकर) कुछ नहीं। तो कल्लो की माँ। अब मैं थियेटर चलूँ, बहुत देर हो गई है। (पड़ोसी से) मुझे माफ करना। आज मेरा जी ठीक नहीं।

[सूरदास का प्रस्थान। पड़ोसी कुछ देर खड़ा सोचता है, इसके बाद धीरे-धीरे चला जाता है।]

कल्लो० : भगवान् ! तू किसी को संतान देता है, किसी को नहीं देता। मगर जिसको संतान नहीं देता, उसको संतान का इतना मोह क्यों दे देता है ? और अगर मोह भी देता है, तो फिर उसे संतान से जुदा क्यों करता है ?

[रायबहादुर हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश। कल्लो की माँ चौंकती है।]

हीरालाल : क्या सूरदासजी घर में ही हैं ? हमें उनसे मिलना है। और हमारा काम बड़ा जरूरी है।

कल्लो० : वे तो थियेटर चले गये। रात को दो बजे लौटेंगे। कल सबेरे आइए।

एक जासूस : और उनका बेटा दीपक कहाँ है ?

कल्लो : वह भी कहीं बाहर गया है ।

शाम० : कब तक लौटेगा ?

कल्लो० : बताकर नहीं गया कि कब आएगा, कब नहीं आएगा ! क्या काम है आपको उससे ?

[कल्लो की माँ कवच उठाना चाहती है।]

दूसरा जासूस : यह क्या है ?

[जासूस कवच लेकर शामलाल को दे देता है।]

शाम० : (जोश से) देखिए भाई साहब ! दिलीप का कवच ! यह वही है।

हीरा० : (कल्लो की माँ से) यह कवच यहाँ कैसे आया तुम्हारे घर में ? जल्दी जवाब दो !

कल्लो ० : (डरकर) जब दीपक छोटा था, तो यह कवच उसके गले में पड़ा था !

[हीरालाल कवच हाथ में लेकर ख़ुशी से इधर-उधर टहलता है। शामलाल दीपक के बचपन का फोटो देखकर चिल्ला उठता है—]

शाम० : यह देखिए दिलीप की तस्वीर !

[कल्लो की माँ हैरान होती है]

हीरा० : (तस्वीर के पास जाकर) भगवान् ! आख़िर बीस साल के बाद तू ने बाप के हृदय की पुकार सुन ली ।

[कल्लो की माँ और भी हैरान होती है ।]

शाम० : भगवान् बड़ा कृपालु है ।

हीरा० : मगर दिलीप इस समय कहाँ है ?

कल्लो० : अपने बाप को ढूँढने गया है । भगवान् जाने, यहाँ लौटकर आता भी है या नहीं आता ।

शाम० : (जासूसों से) क्या तुम्हें मालूम है, वह यहाँ से कहाँ जा सकता है ?

एक जासूस : जी हाँ ! हमें मालूम है । आइए !

शाम० : (दीपक की जवानी का फोटो देखकर) और यह किसकी तस्वीर है ? मालूम होता है शायद···

हीरा० : क्या यह तस्वीर दीपक की है ?

कल्लो० : (डरकर) हाँ, दीपक की है । मगर...मगर आप यह सब-कुछ क्यों पूछ रहे हैं ?

एक जासूस : (एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर) इसलिए कि यह दीपक इनका बेटा है ! और यह उसे बीस साल से खोज रहे थे ।

कल्लो० : (और भी सहमकर और शामलाल की ओर इशारा कर के) और यह कौन है ?

दूसरा जासूस : यह मैं बाद में कहूँगा । तुम एक बात बताओ । दीपक इस समय कहाँ होगा ? हम उससे मिलना चाहते हैं । और ये उसके पिताजी घबरा रहे हैं ।

कल्लो० : आज उसे पहली बार मालूम हुआ कि वह सूरदास का बेटा नहीं है । इसलिए वह सूरदास से खफ़ा हुआ कि तुमने यह सब-कुछ मुझसे क्यों छुपाए रखा । मगर इसमें सूरदास का ज़रा भी दोष नहीं है । उसने बेटे की तरह पाला है ।

[हीरालाल, शामलाल और जासूस सब चले जाते हैं। कल्लो की माँ हताश होकर एक कुरसी पर बैठ जाती है और निराशा में अपने आप से बड़बड़ाने लगती है—]

कल्लो० : भगवान्! आज तू यह क्या लीला दिखा रहा है? आज सूरदास कहता था, यह मेरे जीवन में सुख का सबसे बड़ा दिन है। क्या यही दिन उसके जीवन में दुःख का सबसे बड़ा दिन बन जाएगा? बीस साल तक दीपक का बाप नहीं आया। आज एक आदमी आता है और कहता है, मैं उसका बाप हूँ। तो क्या दीपक चला जाएगा? क्या आज सूरदास का संसार सूना हो जाएगा? थोड़ी देर पहले वह कितनी खुशी से ग़रीबों में रुपये बाँट रहा था, और समझता था, आज वह भी भाग्यवान् है। और इस समय वह अपनी मरी हुई आशा की तरफ़ देख रहा है और सोच रहा है, क्या यह फिर से जी सकती है? भगवान्! अभी तो उसको दिए हुए ग़रीबों के आशीर्वाद हवा में उसी तरह गूँज रहे हैं। अभी तो शहर के लोग उसे मुबारकबाद देने आ रहे हैं।

[दोनों पड़ोसियों का प्रवेश]

पहला : कल्लो की माँ, हमें जलसे में बुलाना न भूलना।

कल्लो० : (मरे हुए दिल से) नहीं भूलूँगी।

दूसरा : और हमें भी।

पहला : (हैरान होकर) मगर आज तुम इतनी उदास क्यों हो?

कल्लो० : कौन कहता है, मैं उदास हूँ। मैं नहीं हूँ। मैं उदास नहीं हूँ। (फूटकर रोती है।) मैं उदास नहीं हूँ।

दूसरा अंक : दसवाँ दृश्य

स्थान—रूपकुमारी के घर के पास बगीचा

समय—रात

[दीपक और रूपकुमारी]

रूपकुमारी : उन्होंने क्या कहा ?

दीपक : (ठंडी आह भरकर) यह कि इस नीले आकाश तले कोई बात भी असम्भव नहीं है !

रूप० : तो मेरी माँ का विचार ठीक निकला ?

दीपक : (हवा में देखते हुए) मैं कौन हूँ ? किसका बेटा हूँ ? मेरी जाति क्या है ? संसार के इन साधारण प्रश्नों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है। मैं सूरदास का बेटा भी नहीं हूँ।

[दीपक ठंडी आह भरता है]

दीपक : मगर तुम, तुम तो हो ?

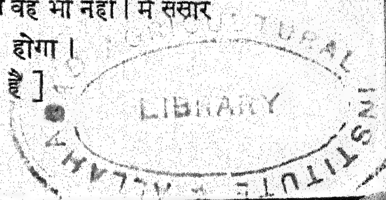
रूप० : शायद अब मैं—मैं भी न रहूँ !

[दीपक हवा में देखने लगता है]

रूप० : (भर्राई हुई आवाज में) दीपक !

दीपक : मेरे मिलने जुलनेवालों में कई ऐसे हैं, जिनके माँ-बाप, अमीर हैं। कई ऐसे हैं जिनके माँ-बाप ग़रीब हैं। कुछ ऐसे अभागे भी हैं, जिसके माँ-बाप मर चुके हैं। मैं उनसे भी अभागा हूँ। उनके पास अपने माँ-बाप के नाम और स्मृति तो है, मेरे पास वह भी नहीं। मैं संसार में सबसे अभागा हूँ। मुझसे गरीब और कोई न होगा।

[दीपक रुआँसा-सा हो जाता है]



रूप० : मैं कहती हूँ, तुम्हें क्या हो गया है ?

दीपक : मैं भी यही कहता हूँ कि मुझे क्या हो गया है ? कल साँझ तक मेरे पास सुख के सारे साधन थे, आज मेरे पास कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि धीरज की लाठी और आशा का दिया भी नहीं (एकाएक रूप की तरफ मुड़कर) रूप ! मेरी दुनिया अँधेरी है। मुझे कुछ दिखाई नहीं देता।

रूप० : चलो ! मैं तुम्हारे बाप से मिलना चाहती हूँ।

दीपक : मेरा कोई बाप नहीं है, दादा ने खुद कह दिया है।

रूप० : वे तुम्हारे लिए बाप से भी बढ़ कर हैं : (कन्धे से पकड़कर) चलो मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।

दीपक : (अपने आपको छुड़ा कर) मेरी मानो तो अब तुम्हें मुझको भूल जाना चाहिए।

रूप० : और तुम समझते हो, यह संभव है ?

दीपक : दुनिया में सब कुछ संभव है।

रूप० : और तुम समझते हो, मैं भी तुम्हें भूल सकती हूँ ?

दीपक : (रुखाई से) यह सोचना मेरा काम नहीं। मैं अपने विषय में सोचता हूँ, तुम अपने विषय में सोचो।

रूप० : (टूटे हुए हृदय से) चलो, मेरी बात छोड़ो। मगर इतना तो बता दो कि अब तुम्हारा क्या इरादा है ?

दीपक : मैं अपने मन का सन्तोष ढूँढूँगा। अगर मिल गया, तो शायद तुम से फिर कभी भेंट हो जाए, नहीं तो......और समझ लो कि यह अन्तिम भेंट है। नमस्ते।

[दीपक तेजी से उठकर, चला जाता है। रूपकुमारी वहीं बैठी रह जाती है, जैसे उसमें हिलने-डुलने की भी शक्ति नहीं है। इतने में यशोदा घबराई हुई आती है। मगर रूप उसी तरह चुपचाप बैठी रहती है।]

यशोदा : (घबरा कर) क्या यहाँ दीपक आया था ?

रूप० : (बिना सिर उठाए, उदासी से) आया था, मगर अभी चला गया है।

यशोदा : (और भी घबराकर) कहाँ चला गया है ? उसका बाप उससे मिलने आया है।

रूप० : (उसी तरह सिर झुकाए हुए) मगर सूरदास उसका बाप नहीं है। वह सूरदास का बेटा नहीं है।

यशोद : (जल्दी-जल्दी) रूप ! तुम नहीं जानतीं, यह दीपक रायबहादुर हीरालाल का बेटा है। और हीरालाल उसे लेने आया है।

[रूपकुमारी चौंक उठती है, और अपनी आँखें मलती है। हीरालाल, शामलाल और जासूसों का प्रवेश]

हीरा० : (घबराए हुए) यहाँ भी नहीं है ?

जासूस : अभी तो यहीं था।

यशोदा : (रायबहादुर से) ज़रा ठहरिए ! (रूप से) बेटी ! बता, वह कहाँ गया है ?

रूप० : मेरे पीछे चले आइए, शायद मिल जाए।

[सब का तेज़ी से प्रस्थान]

•

दूसरा अंक : ग्यारहवाँ दृश्य

स्थान—कालिदास नाटक कम्पनी का दफ्तर

समय—रात

[बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश । बाटलीवाला क्रोध में है, जयकृष्ण उसे समझाने की चेष्टा कर रहा है । मगर बाटलीवाला बात-बात पर बिदकता है ।]

बाटलीवाला : जाना चाहे, तो आज चला जाए, मगर मैं अपना अपमान नहीं सह सकता । इज्ज़त पहले, रुपया पीछे ।

[जोश से टहलने लगता है ।]

जयकृष्ण : आपका अपमान कौन कर सकता है ? और फिर सूरदास तो ऐसा आदमी ही नहीं है । (और भी विनीत भाव से) मालूम होता है, उसके बेटे ने घर में कुछ कह दिया होगा !

[बाटलीवाला जयकृष्ण के सामने आ खड़ा होता है ।]

बाटली० : तो फिर जाकर बेटे से लड़े, मुझसे क्यों लड़ता है ? सिर्फ़ इतना ही कहा कि सूरदास ! आज बड़ी देर कर दी । बस, इसी बात पर बिगड़ बैठा, और ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगा । बताओ, इसमें मेरी क्या भूल थी ।

जय० : भूल तो उसी की थी ?

बाटली० : वह दिन भूल गया, जब घाट पर बैठकर पैसा-पैसा माँगा करता था । आज मेरी कृपा से चार पैसे जमा हो गए, तो मुझी से अकड़ने चला है । यह भी नहीं सोचता कि उसे जो कुछ बनाया है, मैंने बनाया है । सब मेरी कृपा है ।

जय० : यह भी क्या कहने की बात है ? सारी दुनिया जानती है। और वह खुद भी जानता है और कई बार लोगों के सामने मान चुका है।

बाटली० : सचमुच इस दुनिया में जो आदमी किसी के साथ नेकी करता है, वह अपने पाँव पर आप कुल्हाड़ा मारता है। आज मैं जवाब दे दूँ, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाए, दो दिन में आँखें खुल जाएँ जनाब की। इसे रोटियाँ लग गई हैं।

[सूरदास लाठी लिये आता है, और बाटलीवाला की बात सुनकर वह भी बिगड़ उठता है।]

सूरदास : आखिर आप क्या चाहते हैं ? मैं काम करूँ, या चला जाऊँ ? एक फ़ैसला कीजिए।

जय० : (सूरदास के पास आकर) सूरदासजी ! आप ज़ाकर अपना काम करें। आप इनकी बात न सुनें।

सूरदास : (क्रोध से) मेरे विचार में अब ये मुझसे तंग आ गए हैं। अगर यह बात है, तो मैं इसी समय जाने को तैयार हूँ। क्यों मैनेजर साहब ! जवाब देना हो तो साफ़-साफ़ कह दीजिए। मैं टेढ़ी बातें पसंद नहीं करता। मैं साफ़ बात पसन्द करता हूँ।

[बाटलीवाला चुप रहता है।]

सूरदास : (और भी ज़ोर से से) मैनेजर साहब !

[बाटलीवाला अब के भी चुप रहता है।]

सूरदास : (गरजकर) मैं कहता हूँ, अगर आप मुझे रखना नहीं चाहते, तो साफ़-साफ़ कह दीजिए, ताकि मैं इसी समय चला जाऊँ। मैं किसी पर बोझ बन कर नहीं रहना चाहता।

जय० : सूरदासजी ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

सूरदास : मैं कहता हूँ, मैं आज से काम न करूँगा। मेरा इस्तीफ़ा है।

जय० : (धीरे से) तो परिणाम क्या होगा ?

सूरदास : (व्यंग्य से) मुझे आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा। मेरी आँखें खुल जाएँगी ! मैं पैसे-पैसे को तरसूँगा।

बाटली० : (सूरदास के हाथ में दियासलाई देकर) लो ! जाकर अपने हाथ से कम्पनी को आग लगा दो। इसके बाद जहाँ जाना हो, चले जाओ।

[बाटलीवाला तेज़ी से बाहर चला जाता है।]

सुरदास : (विनय से) मैनेजर साहब ! मैं कम्पनी को क्यों आग लगाऊँगा, मेरे तो अपने ही मन में आग लगी हुई है ! आप नहीं जानते, आज मुझे क्या हो गया है ?…आप नहीं जानते, आज मैं क्यों इस तरह…आप नहीं जानते…आप नहीं जानते…

जय० : (हाथ पकड़ कर) ज़रा जल्दी कीजिए, आपका काम शुरू होने में अब देर नहीं है।

सूरदास : अच्छा भाई, चलो ! मगर आज मेरे लिए गाना बड़ा कठिन होगा। आज मेरा मन रो रहा है। रोता हुआ मन कैसे गाएगा ?

जय० : (जाते-जाते) क्यों सूरदास ? आज तुम्हें क्या हुआ ?

सूरदास : आज मेरा मन टूट गया है भाई !

[जयकृष्ण सूरदास की बात नहीं समझता और उसे लेकर बाहर चला जाता है।]



रंगमंच पर रंगमंच

[रंगमंच पर सावित्री-सत्यवान् का नाटक खेला जा रहा है। इस समय वह दृश्य उपस्थित है, जब सत्यवान् सावित्री को ब्याह कर लाता है। सूरदास सत्यवान् के अंधे बाप द्युमत्सेन की भूमिका में है, और वन-

वासियों के वेश में माला लिए एक वृक्ष तले चबूतरे पर बैठा अपनी स्त्री से बेटे के ब्याह की बातें सुनकर खुश हो रहा है। गोया आज सूरदास दुःखी है, मगर उसे काम सुखी बाप का करना पड़ता है।]

सूरदास : सत्यवान् की माँ! तुमने बहू को पसन्द किया? कैसी है वह? ज़रा मुझे भी तो बता दो।

सत्यवान् की माँ : स्वामी! बहू चन्द्रमा से सुन्दर, धरती से विनम्र और गंगा यमुना आदि के स्रोत से भी पवित्र है। ऐसी बहू पाकर हम धन्य हो गये।

सूरदास : और हमारा सत्यवान् भी प्रसन्न है?

सत्यवान् की माँ : वह ऐसा प्रसन्न है, जैसे उसे देवताओं ने वरदान दे दिया हो। आज उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ते।

सूरदास : मगर सावित्री राजा की बेटी है। यहाँ आकर उदास तो न हो जाएगी? वह राजमहलों में पली है, और हम गरीब बनवासी हैं।

सत्यवान् की माँ : स्वामी! उसने वे राजमहल और वे ऐश-आराम अपनी खुशी से छोड़े हैं। (एक ओर देखकर) लो, वे दोनों आपको प्रणाम करने आ रहे हैं। आज का दिन बड़ा सौभाग्यवान् है।

सूरदास : भगवान्! आज मेरे मन की खुशी की सीमा नहीं। आज मेरा पुत्र बहू ब्याह कर लाया है, आज मेरी पर्णकुटी में राजलक्ष्मी आई है। क्या तू आज एक क्षण के लिए मेरी अंधी आँखों को देखने की शक्ति नहीं दे सकता? (रो कर) यह स्वर्गीय दृश्य दूसरों की आँखों से देखने की वस्तु नहीं है। भगवान् (ठंडी आह भरकर) तुम कितने निष्ठुर हो!

सत्यवान् की माँ : क्या आप रो रहे हैं? आज आपको रोना नहीं चाहिए।

सूरदास : (आँसू रोककर) नहीं सत्यवान् की माँ! आज मेरे रोने का नहीं, हँसने, मुस्कराने और खुश होने का दिन है। आज कौन

बाप रो सकता है ?

[सावित्री सत्यवान् आकर द्युमत्सेन (सूरदास) के पाँव धोते हैं। लोग तालियाँ बजाते हैं।]

सूरदास : बेटी ! तेरा श्वसुर ग़रीब है। उसके पास तुझे देने को सिवाय आशीर्वाद के और कोई चीज़ नहीं।

सावित्री : पिताजी ! मेरे लिए आपका आशीर्वाद ही सब कुछ है ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए !

सूरदास : सत्यवान् ! तू धन्य है, जिसे ऐसी स्त्री मिली है। मैं चाहता हूँ, तू कभी इसका मन न दुखाए। प्रतिज्ञा कर।

सत्यवान् : आपकी इच्छा मेरे जीवन का नियम होगा, पिताजी ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ !

सूरदास : जीते रहो बेटा ! जीते रहो और सुखी रहो। यही मेरा आशीर्वाद है। यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है। यही मेरी मनोकामना है।

सत्यवान् की माँ : बहू को भी आशीर्वाद दो। वह आज तुम्हारे घर में पहले दिन आई है।

सूरदास : जब तक आकाश की नीली छत में चाँद-सूरज के दीपक जलते हैं, तब तक तुम्हारा नाम जीता रहे। जितनी दूर हवा जाती है, वहाँ तक तुम्हारा यश फैले। जिस तरह सागर का पानी कभी कम नहीं होता, उसी तरह तुम्हारे मन की प्रीति, पवित्रता और प्रसन्नता कभी कम न हो। और तुम्हारा धर्म सर्वदा जीता रहे।

सत्यवान् की माँ : चलो बेटे ! चल कर दूसरे महात्माओं को भी प्रणाम कर आओ।

[सत्यवान् की माँ, सावित्री और सत्यवान् सब चले जाते हैं। सूरदास उठकर खड़ा हो जाता है।]

सूरदास : भगवान् ! आज मेरे जीवन में दुःख का सबसे बड़ा दिन है। आज मेरी...

जयकृष्ण : (एक ओर से) 'सुख का सब से बड़ा' सूरदास ! सुख का सब से बड़ा दिन कहो । और मुँह पर खुशी लाओ । आज सुख का सब से बड़ा दिन है ।

[सूरदास अपने आप को सँभालने का यत्न करता है, मगर फिर भूल कर जाता है ।]

सूरदास : आज मेरी कुटिया में बहार आई है । आज मेरा बेटा मेरे प्यार को ठुकरा गया है ।

जय० : (एक ओर से दबी हुई आवाज में) सूरदास ! क्या कह रहे हो ? कहो, आज मेरा बेटा ब्याह करके आया है ! आज मेरा बेटा बहू लेकर आया है !

सूरदास : (घबराकर, ऊँची आवाज में जल्दी-जल्दी) आज मेरा बेटा ब्याह करके आया है । आज मेरा बेटा बहू लेकर आया है । आज मेरी खुशी के लिए मेरा घर और मेरा मन दोनों बहुत छोटे मालूम होते हैं ।...(भूल जाता है ।) आज... (याद करने का यत्न करता है ।) आज... (घबरा जाता है ।) आज...आज...आज...

[सूरदास परेशान हो जाता है ।]

जय० : (घबराकर दबी आवाज में) सूरदास ! जो कुछ भूल गया है, उसे छोड़ दो, और गाना शुरू कर दो ।

सूरदास : अच्छा ! बाजा शुरू करो । मैं गाऊँगा ।

[बाजा बजने लगता है । सूरदास गाना शुरू करता है, मगर बाजे से पीछे रह जाता है, इसलिए रुक जाता है । फिर गाना चाहता है, फिर पीछे रह जाता है । आख़िर तीसरी बार सूरदास बाजे के साथ-साथ गाने लगता है । जयकृष्ण शांति की साँस लेता है, मगर लोग नहीं समझते कि आज सूरदास के सीने में कौन-सा तूफान उठ रहा है ।]

गीत

जीवन का सुख आज मोहे प्रभु !
जीवन का सुख आज ।

जल थल नाचे जंगल नाचे,
नाचे वन का मोरा ।
झूम झूम फूलन पर नाचे,
रस का लोभी भौंरा ।
प्रभु जीवन का सुख आज।

[गीत के अन्त में सूरदास अपने आप में नहीं रहता। गाते गाते उसका स्वर ऊँचा होता जाता है । इतना ऊँचा, इतना ऊँचा कि उसका गला फट जाता है । मगर वह फिर भी उसी तरह, उसी जोश से, गाता रहता है । यहाँ तक कि उसकी सारी देह काँपने लगती है, मगर वह फिर भी गाता रहता है । दर्शक हैरान होकर देखते हैं । मंच की ओर से बाटलीवाला और जयकृष्ण स्थिति को समझने का भरसक यत्न करते हैं, मगर कुछ नहीं समझते और सूरदास अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ गाता रहता है । यहाँ तक कि उसके गले की आवाज़ के साथ ही उसके मन और शरीर का बल भी जवाब दे देता है, और रंगमंच पर गिर कर बेसुध हो जाता है । यह देख कर दर्शकों में शोर मच जाता है । बाटलीवाला और जयकृष्ण कूदकर रंगमंच पर आ जाते हैं । बाटलीवाला सूरदास का सिर अपनी गोद में ले लेता है । जयकृष्ण बिजली का पंखा लाकर सामने रख देता है । एक और आदमी पानी लाकर सूरदास के मुँह पर छींटे देता है । कई दर्शक रंगमंच पर चढ़ जाते हैं । रंगमंच पर शोर मच जाता है ।]

बाटली० : (जयकृष्ण से) परदा गिरा दो, और किसी डाक्टर को बुला भेजो ।

जयकृष्ण : (चिल्लाकर) परदा गिरा दो, और कोई आदमी जाकर डाक्टर को बुला लाए ।

बाटली० : सूरदास ! होश में आओ भाई !

जयकृष्ण : (चिल्लाकर) परदा गिरा दो ! परदा गिरा दो ! !

[यवनिका पतन]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर
समय—दोपहर

[लाजवंती और शामलाल बातें करते-करते प्रवेश करते हैं।]

लाजवंती : इसके बाद ?

शामलाल : इसके बाद हमने रूपकुमारी और उसकी माँ को साथ लिया, और मोटर में बैठकर दिलीप की खोज में निकले। सबसे पहले स्टेशन पर गये, फिर घाट देखे, फिर गलियों और बाजारों की खाक छानी। मगर उसका कहीं पता न लगा! उस समय भाई साहब को अगर तुम देखतीं, तो डर जातीं। उनके मुँह पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। कभी पीला, कभी सफ़ेद, कभी काला। कभी ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगते थे, कभी एकदम चुप हो जाते थे। शायद सोचते होंगे, कि लड़का हाथ आकर हाथ से निकला जाता है। मगर मेरा मन कहता था, आज भगवान् भला करेगा, और भगवान् ने भला किया। हमारा दिलीप हमारे हाथ लग गया।

लाज० : (मुस्कराकर) इस तरह नहीं, खोलकर कहिए। मैं एक-एक बात सुनना चाहती हूँ।

शाम० : (मुस्कराकर) अच्छा बाबा! एक-एक बात कहता हूँ।

लाज० : हाँ, कहिए।

शाम० : पुलिस के एक आदमी ने बताया कि उसने एक अनमने

युवक को शहर से बाहर जाते देखा था। यह युवक घबराया हुआ, सहमा हुआ, खोया हुआ था—ऐसे जैसे कोई सपने में चल रहा हो, ऐसे जैसे कोई अपने आप से डरकर भागा जा रहा हो, ऐसे जैसे कोई अनदेखे बोझ तले दबा जा रहा हो। और जब सिपाही ने उसकी शक्ल सूरत बयान की, तो हमें विश्वास हो गया कि यह दिलीप ही है। बस, हम उसी तरफ़ चले, और थोड़ी देर बाद हमने उसे सड़क पर जाते देखा।

लाज० : काशी से कितनी दूर ?

शाम० : (सोचकर) कोई पाँच-छः मील दूर। उस समय उसकी पीठ हमारी ओर थी, और वह धीरे-धीरे चला जा रहा था। ऐसे जैसे कोई बेकार जा रहा हो। हमने अपनी मोटर को रोक लिया और नीचे उतरने लगे। इतने में सामने से एक और मोटर आती दिखाई दी। अब दोनों मोटरों की रोशनी उस पड़ रही थी और वह रोशनी से बचना चाहता था। शायद डरता था, कि कोई उसे पहचान न ले। एक क्षण के लिए उसने रुककर सोचा, और फिर एक तरफ़ भागा। मगर उधर एक वृद्ध था, जिसे उसकी चुंधियाई हुई आँखों ने न देखा था। वह अपने जोर में उसके साथ टकराकर पीछे की ओर गिरा, दूसरी बार उधर से आती हुई मोटर के साथ टकराया, और दस गज़ परे जा पड़ा। उस समय हमारा दिल धक-धक कर रहा था। हम प्रार्थना कर रहे थे।

लाज० (सहमकर) भगवान् ने बचा लिया, वरना मोटर के नीचे आ जाता, तो सारे किये-कराए पर पानी फिर जाता है। उसे पाने की आशा भी मर जाती।

शाम० : हमने पास जाकर देखा, तो वह बिल्कुल बेसुध पड़ा था और उसके सिर से लहू बह रहा था। प्रारब्ध अच्छा था, वहाँ एक डाक्टर मिल गया। उसने मरहम-पट्टी कर दी, और हम मोटर में डाल कर यहाँ ले आए। अब देखें क्या होता है ? मगर अभी तक किसी को पहचानता नहीं। न अपने को, न पराये को। भगवान् भला करे।

लाज० : डाक्टर क्या कहता है ?

शाम० : अभी कुछ नहीं कहता—कोशिश कर रहा है।

लाज० : मेरा मन कहता है, सब कुछ ठीक हो जाएगा। आप दस हज़ार रुपया निकालिए।

शाम० : (मुस्कराकर) कैसा दस हज़ार रुपया ?

लाज० : मैंने मनौती मानी थी, कि जब दिलीप मिल जाएगा तो दस हज़ार रुपया दान करूँगी।

शाम० : (हँसकर) मनौती मानी तुमने, ज़ुर्माना मुझे हो। यह किस दुनिया का दस्तूर है ?

लाज० : मैं कुछ नहीं कहती। आप ही अपने दिल पर हाथ रख कर कहिए, यह ज़ुर्माना किसे होना चाहिये ? मुझे या आपको ?

[शामलाल को धक्का-सा लगता है।]

शाम० : (गंभीरता से) लाज ! आज मुझे बीस वर्ष के बाद खुशी मिली है। कृपा करके आज कोई ऐसा प्रसंग न छेड़ो, जिससे मेरा मन फिर रोने लगे। घाव पर कपड़ा भी छुरी बन कर लगता है। दुखे हुए अंग को हवा भी दुखा देती है !

लाज० : तो फिर दस हज़ार रुपया निकालिए, ताकि यह प्रसंग सदा के लिए समाप्त हो जाए।

शाम० : तुम दस हज़ार कहती हो, मैं बीस हज़ार दूँगा, तीस हज़ार दूँगा। मगर उसे स्वस्थ तो हो लेने दो।

[यशोदा और भंडारी का प्रवेश]

भंडारी : क्षमा कीजिएगा, हम पूछे बिना चले आए।

लाज० : चूँकि हम अभी विलायत नहीं गए, इसलिए तुम्हारी भूल क्षमा हो गई।

शाम० : (यशोदा से) अब रूप का क्या हाल है ?

यशोदा : वही हाल है जो पहले था। कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ा। अभी तक उदास है।

भंडारी : मैं कहता हूँ, जब तक दिलीप, (यशोदा की तरफ़ देखकर) मेरा मतलब है दीपक, ठीक नहीं हो जाता, तब तक रूपकुमारी के मुँह पर हँसी-खुशी कैसे आ सकती है ? इसके लिए हमें चार दिन इन्तज़ार करना पड़ेगा। मेरा मतलब है—

लाज० : (मुस्कराकर) अब दूसरी बात भी कह दो—जब मैं इंग्लैंड गया था।

[सब क़हक़हा लगाकर हँसते हैं।]

भंडारी : (यशोदा से) मैंने रायबहादुर से कह दिया है, कि दीपक ने अपने लिए बहू चुन ली है। अब आपका काम केवल यह है कि इस पर स्वीकृति की मुहर लगा दें और ब्याह के कार्ड छपवा लें।

[बाहर से रायबहादुर की आवाज़]

हीरा० : शामलाल।

शाम० : (ऊँची आवाज़ से) आया ! (लाजवंती से) तुम भी मेरे साथ आओ लाज !

लाज० : चलिए !

[दोनों का प्रस्थान]

भंडारी : (यशोदा) रायबहादुर ने कह दिया कि मुझे यह संबंध स्वीकार है !

यशोदा : मगर...

भंडारी : आप ज़रा चिन्ता न करें। भगवान् की कृपा से सब-कुछ ठीक हो जाएगा। एक विद्वान् ने कहा है, भगवान् ने आदमी को ख़ुश होने के लिए बनाया है। अगर आदमी उदास रहता है, तो यह उसका अपना अपराध है। मेरा मतलब है—और आप फिर मुझ पर हँसेंगी।

[दोनों का प्रस्थान]

तीसरा अंक : दूसरा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल के घर का एक दूसरा कमरा

समय—दोपहर

[हीरालाल, शामलाल और तीन डॉक्टर । ज़रा परे लाजवन्ती ।]

हीरा० : (उदासी से) डाक्टरों की सम्मति है कि अब दिमाग़ ठीक नहीं हो सकता ।

शाम० : (घबराकर) क्यों ठीक नहीं हो सकता ?

एक डाक्टर : आपके दिलीप की स्मरण-शक्ति जाती रही है । अब उसे पहले की कोई बात याद नहीं रही ।

दूसरा डाक्टर : यूँ समझो, कि यह उसका नया जन्म हुआ है । पुरानी याद सब गई ।

शाम० : तो फिर इलाज क्या है ?

पहला डॉक्टर : इलाज सिर्फ़ आपरेशन है ।

शाम० : (घबराकर) ऑपरेशन !

दूसरा डाक्टर : और दिमाग का ऑपरेशन सिर्फ़ जर्मनी में होता है, और कहीं नहीं होता ।

शाम० : हम जर्मनी जाने को तैयार हैं ।

पहला डाक्टर : मगर वहाँ जाकर ऑपरेशन कराने के बाद भी निश्चित नहीं । शायद यह सब कुछ करने पर भी कुछ न बने ।

शाम० : कोशिश करने में क्या हर्ज है ? (हीरालाल से) क्यों भाई साहब !

हीरा० : कर लो । मुझे कोई एतराज नहीं । मगर डाक्टर साहब! ऑपरेशन में जान का तो खतरा नहीं ?

दूसरा डाक्टर : जान का खतरा तो है ।

शाम० : (हताश होकर) तो इसका तो यह मतलब है कि यह

मार्ग भी बन्द है।

तीसरा डाक्टर : इसका यह मतलब है, कि अगर किसी समय उसके दिमाग को अंदर या बाहर से कोई विशेष धक्का पहुँचे और वह उस धक्के को सह सके, तो सम्भव है उसकी स्मरण शक्ति एक क्षण में लौट आए। दूसरे शब्दों में मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस बीमारी का इलाज विज्ञान के पास नहीं है, भगवान् के पास है। प्रकृति पर छोड़ दीजिए। शायद प्रकृति ही ठीक कर दे।

[शामलाल बेचैनी से इधर-उधर टहलता है।]

शाम० : तो क्या किया जाए ?

हीरा० : तुम बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?

शाम० : (रुँधे हुए गले से) मेरी तो राय है कि हमें अपनी ओर से भरसक यत्न करना चाहिए। कौन जाने, भगवान् ठीक कर दे। जिस भगवान् ने हमें बेटा लौटा दिया है, वह बेटे को उसकी स्मरण-शक्ति भी लौटा सकता है। उसके घर में काहे का अभाव है ?

[लाजवंती इशारे से शामलाल को अपने पास बुलाती है और धीरे-धीरे कुछ कहती है। शामलाल सुनकर रायबहादुर की तरफ़ बढ़ता है।]

हीरा० : लाजवंती क्या कहती है ?

शाम० : वह कहती है, मैं यह ऑपरेशन कभी न होने दूँगी। जीवन पहले, स्मरण-शक्ति पीछे। वह जीता रहे, हमारे लिए यही सब कुछ है। हम ख़तरा न खरीदेंगे।

पहला डाक्टर : बिल्कुल ठीक !

हीरा० : मेरा भी यही ख्याल है, लाजवंती ठीक कहती है। दिलीप को भूली हुई बातें याद आएँ, या न आएँ, मगर यह हमारे सामने चलता-फिरता और हँसता-खेलता रहे। मेरे लिए यही बहुत है। मैं इसी पर संतोष कर लूँगा।

आवाज़ : मगर सूरदास...

[सब आँख उठाकर देखते हैं। भंडारी बोलते-बोलते आता है।]

शाम० : आइए भंडारी साहब !

भंडारी : सूरदास को तो सूचना देनी होगी।

शाम० : सूचना दें, या उसे यहाँ बुला लें ?

भंडारी : यह और भी अच्छा ! यहीं बुला लो। वह वहाँ बिलख-बिलख कर रोता होगा।

शाम० : (डाक्टर से) आपकी क्या राय है ? क्या यह नहीं हो सकता कि सूरदास को देखकर दिलीप को अपना भूला हुआ जीवन याद आ जाए ? सूरदास ने उसे पाला हैं, और उसे बाप की तरह प्यार किया है।

पहला डाक्टर : मुश्किल है।

दूसरा डाक्टर : अगर इस लड़के पर रूपकुमारी का असर नहीं हुआ, तो सूरदास का क्या असर हो सकता है ?

हीरा० : (सोचकर) तो अभी रहने दो।

भंडारी : मगर वहाँ सूरदास का क्या हाल होगा, आपको कुछ इसका भी ख्याल है ?

हीरा : उसका वहाँ क्या हाल होगा, यह तो मैं नहीं जानता। मगर यह जानता हूँ कि यहाँ आकर उसका दिल टूट जाएगा। जरा सोचिए, उसने इस लड़के को पाला है, इस पर अपनी जान छिड़की है, इस पर पता नहीं क्या-क्या आशाएँ बाँधी हैं। और अब वह आकर देखेगा कि यह लड़का उसे भी नहीं पहचानता, तो उसका क्या हाल होगा ? मैं बाप हूँ, मैं जानता है, ऐसी व्यथा में वह किस तरह तड़पेगा और उसके मन पर किस तरह छुरियाँ चलेंगी ? इसलिए मेरा ख्याल है, अभी उसे कोई समाचार न भेजा जाए। हाँ, इसे होश आ जाए, तो सूरदास को उसी समय बुला लेना होगा।

भंडारी : ठीक है। (डाक्टर से) क्यों डाक्टर ! आपकी क्या राय है ?

दूसरा डाक्टर : मेरी राय है, रायबहादुर ने लाख रुपये की बात कह दी है। अभी सूरदास को न बुलाया जाए।

●

तीसरा अंक : तीसरा दृश्य

स्थान—काशी में कालिदास नाटक कम्पनी

समय—संध्या

[बाटलीवाला और उसका सहायक जयकृष्ण]

बाटली० : ये अभिनेता लोग इतने छोटे दिल के होंगे, इसकी मुझे ज़रा भी आशा न थी। वेतन मिलने में चार दिन की देर हुई और इनकी जान निकलने लगी।

जय० : (धीरे से) चार दिन की नहीं, चार महीने की।

बाटली० : (क्रोध से) चार महीने ही की सही ! मगर उन्हें इतना तो सोचना चाहिए कि मालिक कष्ट में है, जरा चार दिन धीरज रखें।

जय० : कहते हैं, खाएँ कहाँ से ?

बाटली० : तो कह दो, जाकर नालिश कर दें। जो होगा, देखा जायगा। मैं नहीं दे सकता।

[डाकिया एक रजिस्ट्री लाकर बाटलीवाला के सामने रख देता है। बाटलीवाला रसीद पर हस्ताक्षर करता है, और पत्र जयकृष्ण की ओर सरका देता है। जयकृष्ण पत्र पढ़कर ठंडी आह भरता है।]

बाटली० : क्या है ?

जय० : (सहमकर) एक और आफत !

बाटली० : मगर है क्या ?

जय० : मास्टर अब्दुल क़रीम का भी नोटिस आ गया।

बाटली० : तो आहें भरने की क्या जरूरत है ? फाड़कर फेंक दो रद्दी की टोकरी में।

जय० : और सब नोटिस दे चुके थे, एक अब्दुल क़रीम बाकी था। आज उसका भी नोटिस आ गया है। इसका मतलब यह है कि कंपनी समाप्त हुई। नायक के बिना कौन-सा नाटक हो सकता है? नायक गया, कंपनी गई।

बाटली० : तो और रास्ता ही क्या है? तुम बताओ।

जय० : कोई और काम शुरू न कर दें?

बाटली : बोलो!

जय० : जूतों की दूकान न खोल लें!

बाटली० : (चमककर) हम यह काम करेंगे! हमारा पेशा खुशियाँ बेचना है, जूते बेचना नहीं। हम यह काम नहीं कर सकते।

जय० : (सहमकर मगर साहस से) आप अमीर आदमी हैं, आप न करें। मगर मैं ग़रीब आदमी हूँ, मुझे तो कुछ करना ही पड़ेगा। पेट बड़ा ज़ालिम है।

[बाटलीवाला सोचते-सोचते टहलने लगता है]

बाटली० : अगर सूरदास फिर आ गए, तो एक बार फिर उसी तरह चाँदी बरसने लगे!

जय० : अब सूरदास के फिर आने और चाँदी बरसाने के दिन गए। अब तो मुसीबतें बरसने के दिन हैं।

बाटली० : यही तो मैं सोच रहा हूँ कि सूरदास को किस तरह फिर से लाया जाए? मुझे तो आशा है कि वह आ सकता है।

जय० : अब यह आशा छोड़ दीजिये। सूरदास आ चुका!

बाटली० : (किसी निश्चय पर पहुँचकर) जयकृष्ण! चलो, एक बार सूरदास के पास फिर चलें।

जय० : (हिचकिचाकर) मगर गालियाँ कौन खायेगा?

बाटली० : (मुस्कराकर) तुम।

जय० : और अगर वह झाड़ू लेकर मारने दौड़ा, तो...

बाटली० : (गंभीरता से) मेरी खोपड़ी की तारीफ़ करो।

जय० : कोई नई योजना सूझ गई ?

बाटली० : अरे जयकृष्ण ! ऐसी बात सूझी है कि फड़क उठोगे यार मेरे ! फड़क उठोगे ! सूरदास आयेगा, रुपया आएगा, सफलता आयेगी और एक बार फिर दुनिया हमारी तरफ़ देखेगी। एक बार फिर हमारा सिर ऊँचा उठेगा। एक बार फिर सूखा हुआ बाग़ लहलहाएगा।

जय० : तो चलो, अभी चलें। भले काम में देर बुरी।

[दोनों का प्रस्थान]

●

तीसरा अंक : चौथा दृश्य

स्थान—सूरदास के घर में दीपक का कमरा

समय—रात

[कल्लो की माँ एक नौकर को डाँटते हुये प्रवेश करती है ।]

कल्लो की माँ : मैंने तुमसे कै बार कहा है, कि सूरदास बीमार है, धीरे-धीरे बोला करो । तुम ज़रा भी खयाल नहीं करते । क्या तुम बहरे हो, या पागल हो ?

[नौकर पानी की बाल्टी लेकर चला जाता है । बाटलीवाला और जयकृष्ण का प्रवेश । कल्लो की माँ चौंकती है ।]

बाटली० : (ठंडी साँस भरकर) इस लौंडे ने तो सूरदास को मार डाला ।

बाटली० अब क्या हाल है ?

कल्लो० : वही जो पहले था । (धीरे से) कभी चुपचाप लेट जाता है, कभी गरजने लगता है, कभी गिड़गिड़ाकर दीपक को बुलाने लगता है, कभी भूमि पर गिर पड़ता है, और बच्चों के समान फूट-फूट कर रोने लगता है । बिल्कुल पागल हो गया है यह तो खाने-पीने की भी सुध नहीं रही ।

जय० मैंने ऐसा प्यार करनेवाला बाप आज तक नहीं देखा ।

बाटली० : हम ज़रा सूरदास को देखने आए हैं । देख लें ?

कल्लो० : (डरकर) न बाबा ! तुम्हारी आवाज़ सुन कर तो वह और भी पागल हो उठेगा । क्या तुम उस दिन की बात भूल गए हो ?

बाटली० : देखो, कल्लो की माँ ! हम कल यहाँ से बाहर जा रहे हैं। इसलिए सोचा, सूरदास से भी मिलते चलें। आख़िर तुम जानती हो, उसने बीस साल तक हमारे साथ काम किया है।

जय० : और अब बीमार है।

कल्लो० : (कुछ सोच कर) मगर वह तो तुम्हारा नाम सुनकर ही गरजने लगेगा !

बाटली० : तो उसे बताने की क्या ज़रूरत है ? हम चुपचाप दूर ही से देख लेंगे।

[अंदर से सूरदास की आवाज़]

सूरदास : कल्लो की माँ ! ओ कल्लो की माँ ! !

कल्लो० : लो, फिर दौरा हुआ।

[दीपक के वस्त्र लिये हुये सूरदास का प्रवेश]

सूरदास : कल्लो की माँ। क्या तुम यहाँ हो ?

कल्लो० : हाँ बाबा ! मगर तुम बाहर क्यों आ गये ?

सूरदास : देखो ! आज मैं कितना खुश हूँ ? आज मेरा जी चाहता है अपनी सितार बजाऊँ और झूम-झूम कर गाऊँ। क्या तुम जानती हो, आज मैं क्यों खुश हूँ ? (बैठकर) अच्छा, बूझ तो जाओ, मैं क्यों खुश हूँ ?

कल्लो० : (सूरदास की बात का जवाब न देकर, भर्राई हुई आवाज़ में) यह आप कपड़े क्यों उठा लाये हैं इस समय ?

सूरदास : अभी-अभी मैंने सपना देखा है कि मेरा दीपक मेरे पास लौट आया है। इसलिए मैंने सोचा कि उसके लिये दो चार नये सूट सिलवा रखूँ। ताकि वह आते ही खुश हो जाए। ओ कल्लो की माँ ! क्या तू जानती है, जब मैं उसे कोई चीज़ देता हूँ तो वह क्या कहा करता है—"दादा ! थैंक यू" (ज़ोर से क़हक़हा लगाकर) अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़के अपने माँ-बाप को बड़ी आसानी से खुश कर लेते हैं। कल्लो की माँ ! दरज़ी से कहो, इस सूट से माप ले ले। (जवाब न पाकर) कल्लो की माँ। (ज़ोर से) कल्लो की माँ ! !

[जोश से खड़ा हो जाता है।]

कल्लो० : (रुँधे हुए गले से) हाँ बाबा !

सूरदास : (खिन्न होकर) तू मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देती ? क्या तू समझती है, मेरा सपना झूठा है ? क्या तू समझती है, मैं बकवास कर रहा हूँ ? क्या तुझे भय है कि मेरा दीपक नहीं आएगा ?

[सूरदास जोश से काँपने लगता है।]

कल्लो० : आएगा क्यों नहीं ? ज़रूर आएगा। राजा बेटा है वह। बाप के पास उसे आना ही चाहिए।

सूरदास : शाबाश, कल्लो की माँ ! मैंने तेरा वेतन बढ़ा दिया। आजकल तेरा वेतन क्या है ?

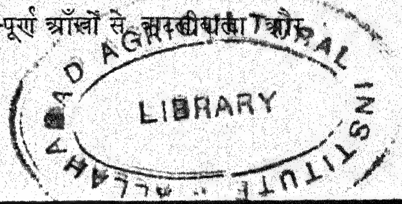
कल्लो० : मैंने वेतन बढ़ाने को कब कहा है ?

सूरदास : (रोब के साथ) मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहता। मेरी बात का जवाब दे। आजकल तेरा वेतन क्या है ?

कल्लो० : (टूटे हुए दिल से) बारह रुपये।

सूरदास : तो आज से मैंने पन्द्रह कर दिए। मगर एक बात याद रखना। मेरे दीपक से कभी लड़ाई-झगड़ा न करना। (कपड़े फेंककर) यह ले सूट, यह दर्जी को देना और कहना, अच्छी तरह सिए। दीपक खराब कपड़े नहीं पहनता। कल्लो की माँ ! जरा सोचो, उधर दर्जी कपड़े सिएगा, इधर मैं अपने घर में बैठकर दीपक के लौटने की खुशी में अपनी सितार बजाऊँगा। (सूरदास वापस मुड़ता है, मगर भूल से उधर चला जाता है, जहाँ दीपक का मेज पड़ा है। वहाँ जाकर हाथों से टटोलता है, और एक पुस्तक हाथ में लेकर कहता है) कल्लो की माँ ! क्या तुमने मेज़ को साफ नहीं किया ? देखो कितनी धूल पड़ी हुई है। अगर दीपक यह हाल देखे तो क्या कहे ? (पुस्तक को अपने कपड़े से पोंछकर रख देता है।) ये नौकर लोग अपने आप कोई काम नहीं करते। बस चाहते हैं, वेतन मिल जाए; खाना मिल जाए; काम न करना पड़े।

[कल्लो की माँ चुपचाप करुणा-पूर्ण आँखों से सूरदास को और



जयकृष्ण की ओर देखती है। सूरदास आगे बढ़ता है, और उस मेज के निकट पहुँचता है, जहाँ भोजन का थाल रखा है। सूरदास भोजन को छूकर देखता है, तो और भी बिगड़ उठता है, और जोर से चिल्लाने लगता है।]

सूरदास : यह क्या एकदम ठंडा भोजन ! ! कल्लो की माँ, मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि मेरा दीपक ठंडा भोजन पसंद नहीं करता। मगर तुम इसकी सदा उपेक्षा कर जाती हो। जरा सोचो, क्या यह भोजन खाने-योग्य है ? जरा सोचो, क्या उसने आज तक कभी ऐसा ठंडा भोजन खाया है ? और अगर वह खा ले, तो क्या बीमार न हो जाएगा ?

[सूरदास जल्दी-जल्दी पलंग के पास जाकर देखता है। बिस्तरा ठीक बिछा है, मगर सूरदास को खिन्नता के कारण कोई बात पसंद नहीं आती। वह एक तकिया उठा लेता है और उसे हाथ में लेकर कहता है—]

सूरदास : यह तकिया क्या यहाँ रखा जाता है ? और यह देखो चादर कहाँ लटक रही है ?

[बाटलीवाला जयकृष्ण को संकेत करता है कि बाजा बजाओ। जयकृष्ण बाजा की ओर बढ़ता है।]

सूरदास : (अपना वक्तव्य जारी रखते हुए) कल्लो की माँ ! पता नहीं, आजकल तुम्हें क्या हो गया है ? पता नहीं, आजकल तुम सारे-सारे दिन क्या करती रहती हो ? पता नहीं आजकल तुम्हारा ध्यान किधर रहता है ? क्या तुमने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था ? (क्रोध से) कल्लो की माँ ! जवाब दे। तूने कल रात दीपक के लिए दूध का गिलास रखा था ? अगर रखा था; तो मुझे दिखा, कहाँ है ? देखूँ, गरम है, या नहीं ? कल्लो की माँ ! (जोर से) कल्लो की माँ ! (और भी जोर से) कल्लो की माँ ! तू मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देती ?

[जयकृष्ण बाजे पर 'मूरख मन होवत क्यों हैरान' की ट्यून बजाना आरम्भ करता है। सूरदास चौंकता है]

सूरदास : यह कौन है ? क्या दीपक आ गया (खुशी से) कल्लो की माँ ! देख ले, मेरा सपना सच्चा निकल आया। कल्लो की माँ ! देख ले, मेरा दीपक आ गया। (जल्दी-जल्दी द्वार की ओर बढ़ते हुए) मेरा दीपक आ गया।

[बाटलीवाला सामने आकर सूरदास को रोक लेता है]

सूरदास : कौन ? दीपक।

बाटली० : यह मैं हूँ सूरदास !

सूरदास : कौन मैनेजर ! आप यहाँ क्या करने आए हैं ? आपको यहाँ आना मना है।

बाटली० : देखो सूरदास ! मैंने तुम्हारे दीपक को ढूँढ़ने का एक उपाय सोचा है।

सूरदास : (निराश होकर) तो क्या अभी दीपक नहीं आया ? भगवान् तू क्या कर रहा है ?

बाटली० : मैंने निश्चय किया है, कि तुम्हारी जीवन-कथा का एक नाटक लिखवाया जाए, और उसका नाम रखा जाए, 'सूरदास का बेटा' या 'सूरदास का पुत्र-प्रेम' तुम उसमें सूरदास का काम करोगे। तुम उसमें 'पितृ-प्रेम' को रंग-मंच पर जीती-जागती वस्तु बनाकर दर्शकों के सामने उपस्थित करोगे। तुम लोगों के दिल में—आग लगाओगे, आग।

सूरदास : (बिगड़कर) मैं अब नाटक में काम नहीं करूँगा। यह मेरा अन्तिम निश्चय है।

बाटली० : अरे भाई ! सुनो तो सही। तुम तो बात-बात पर बिदकते हो और हवा में तलवारें चलाते हो। हम तुम्हारे पुत्र-प्रेम की अमर कहानी लेकर भारत के हर शहर में जाएँगे और वहाँ बड़े-बड़े विज्ञापन देंगे। क्या यह संभव है कि दीपक यह विज्ञापन देखे और नाटक देखने के लिए दौड़ा हुआ न चला आए ? कम-से-कम तुम्हें देखने के लिए एक बार तो उसका मन अधीर हो ही उठेगा, और वह नाटक देखने आएगा।

सूरदास : (कुछ-कुछ समझकर) अच्छा ! फिर ?

बाटली० : और जब वहाँ आकर देखेगा, कि जिस प्राणी ने उसके प्राण बचाए हैं, जिसने उसका पिता न होकर उसे पिता से बढ़-कर प्यार किया है, जिसने उसके लिए भगवान् का भजन छोड़कर संसार के मोह-ममता में फँसना स्वीकार किया है, वही आदमी, वही देवता, वही स्नेह का अवतार, रंगमंच पर खड़ा 'दीपक' 'दीपक' कहकर चिल्ला रहा है, और उसकी अन्धी आँखों से प्यार का पानी बह रहा है, तो क्या वह तुम्हारे चरणों में न आ गिरेगा ? सूरदास आखिर वह आदमी है, मिट्टी का लौंदा नहीं है, उसका दिल रो उठेगा ।

सूरदास : (आशापूर्ण स्वर में) अच्छा ! अच्छा !! अगर आपकी यही सम्मति है, तो मैं चलूँगा ।

बाटली० : तुम चलोगे, तो मैं कहता हूँ, तुम्हारा बेटा तुम्हें मिलेग और तुम्हारे मन की खुशी तुम्हारे मन में लौट आएगी ।

[सूरदास बेसुध होकर अपने शरीर और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों को लेकर सीधा खड़ा हो जाता है और फिर घुटनों के बल झुककर प्रार्थना का यह गीत गाने लगता है]

गीत

अन्धे की लाठी तू ही है, तू ही जीवन-उजियारा है,
तू ही आकर सम्भाल प्रभू ! तेरा ही एक सहारा है ।
अन्धे की लाठी—
दुख दर्द की गठरी सिर पर है
पग-पग पर गिरने का डर है
परमेश्वर अब पत राख तू ही, तू ही पत राखनहारा है ।
अन्धे की लाठी—
जिन पर आशा थी छोड़ गए, बालू के घरौंदे फोड़ गए,
मुँह मोड़ गए, मन तोड़ गए, अब जग में कौन हमारा है ?
अन्धे की लाठी—

[परदा गिरता है ।]

तीसरा अंक : पाँचवाँ दृश्य

स्थान—लाहौर का एक बाजार

समय—दोपहर

[एक मसख़रा गले में ढोल डाले और हाथ में विज्ञापन लिये आता है और ढोल बजाता है। जब लोग जमा हो जाते हैं, तो उनमें विज्ञापन बाँटता है, और कहता है—]

मसखरा : लाहौर के निवासियो ! काशी का यह मखसरा, काशी से चलकर आपको यह शुभ-समाचार सुनाने आया है कि आपके लाहौर में 'कालिदास नाटक कम्पनी' आई है और अपने साथ कई अभिनेताओं के अतिरिक्त भारत का वह अद्वितीय कलाकार भी लाई है, जो भारत से बाहर भी मशहूर है। मेरा इशारा सूरदास की तरफ़ है। सूरदास का नाम आपने सुना होगा। मगर उसके गले की मीठी तानें न सुनी होंगी, न उसे रंगभूमि पर काम करते देखा होगा। आज वह अपनी जीवन-कहानी सुनाएगा। जो सज्जन इस कलाकार का जीवन नाटक देखना चाहें, वे रात के साढ़े नौ बजे कालिदास नाटक कम्पनी आ जाएँ। वहाँ सूरदास भी होगा, काशी का (सिर झुकाकर) यह मसख़रा भी होगा, और दूसरे कलाकार भी होंगे।

[ढोल बजाता है, विज्ञापन बाँटता है, और उछलता कूदता हुआ चला जाता है।]

तीसरा अंक : छठा दृश्य

स्थान—रायबहादुर हीरालाल का घर

समय—तीसरा पहर

[यशोदा, लाजवंती और एक नौकर]

यशोदा : (नौकर से) मेरा असबाब बाँधो, मैं आज काशी जा रही हूँ।

लाजवंती—(नौकर से) ज़रा ठहरो। (यशोदा से) बहन, चाहे मानो, चाहे न मानो, मगर आज तो जाने न दूँगी।

यशोदा—रूप का ब्याह कर लिया, मन का यह बोझ भी हलका हुआ। ज़रा सोचकर देखो, मेरा यहाँ ठहरना उचित है क्या ? आखिर बेटी के घर में कब तक पड़ी रहूँ ?

लाज० : दो-चार दिन और ! अब वहाँ भी तुम्हारा कौन है ? अकेले पड़े-पड़े तो आदमी का भी जी ऊब जाता है।

[शामलाल का प्रवेश]

लाज० : लो देखो ! ये तो आज ही जाने को तैयार हो गई। लाख कहा है, दो दिन और ठहर जाओ, पर ये मानती ही नहीं हैं। आप इनके सामने नौकर से कह दीजिए, असबाब न बाँधे।

शाम० : (नौकर से) जाओ, जाकर इनका असबाब बाँधो। ये जाएँगी।

यशोदा : आप तो नाराज़ हो गए ! मगर ज़रा सोचिए, इसमें नाराज़ होने की क्या बात है ?

शाम० : (यशोदा की बात का उत्तर न देकर नौकर से) और हमारा

असबाब भी बाँध दो।

[यशोदा आश्चर्य से शामलाल की ओर देखती है।]

लाज० : हमारा असबाब क्यों ?

शाम० : हम भी काशी जा रहे हैं।

लाज० : हम भी काशी जा रहे हैं! मगर यह क्यों ?

शाम० : भाई साहब की आज्ञा!

[नौकर चला जाता है।]

यशोदा : बहुत ही अच्छी बात है। मुझे सुनकर खुशी हुई। और कौन जा रहा है ?

शाम० : मैं, (लाजवंती की ओर इशारा करके) यह, आप, भाई साहब, रूप, दिलीप, डाक्टर, दो-चार नौकर।

यशोदा : मैं तो पहले ही कह रही थी, काशी चलो। लड़के का दिमाग वहीं चलकर ठीक होगा।

शाम० : आपने दो-चार बार कहा होगा, मैंने हजार बार कहा था कि यह काशी चलें या सूरदास को यहाँ बुलाएँ। मगर भाई साहब सुनते ही न थे। आज अपने आप तैयार हो गए।

यशोदा : तो चलकर तैयारी कर लें। समय बहुत कम है।

[यशोदा का प्रस्थान]

लाज० : क्या आज ही जाना है ?

शाम० : आज ही क्या मतलब ? अभी दो घंटे बाद। छै बजे गाड़ी छूटती है। इस समय चार बजे हैं!

लाज० : ओ बाबा! इतना थोड़ा समय! तो जरा जल्दी करूँ मैं!

[एक ओर से शामलाल और लाजवंती का प्रस्थान, दूसरी ओर से दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश। बातें करते हुए—]

रूप० : तो तुम्हें कुछ याद नहीं आता ? मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा था।

दीपक : (चलते-चलते रुककर) तुमने मुझे एक पत्र लिखा था ?

[फिर चलने लगता है ।]

रूप० : (फिर रोककर) और तुम्हें यह भी याद नहीं, उस दिन तुम विश्वविद्यालय में सर्व-प्रथम रहे थे, और उस दिन गंगा के किनारे हमारी सुलह हुई थी ।

दीपक : मुझे कुछ याद नहीं ।

[फिर चलने लगता है ।]

रूप० : तुम्हें यह भी याद नहीं कि सूरदास कौन है ? कल्लो की माँ कौन है ? भंडारी कौन है ? मैं कौन हूँ ? (दीपक जाकर एक सोफ़े पर बैठ जाता है ।) ज़रा दिमाग पर जोर देकर सोचो । तुम सूरदास के पास रहते थे । वह तुम्हें अपना बेटा कहता था ज़रा सोचो । तुम रेडियो में गाते भी थे ।

दीपक : क्या करूँ ? मुझे कुछ याद नहीं आता । हाँ, कभी-कभी ऐसा मालूम होता है, जैसे याद आ रहा है, जैसे बहुत दूरी पर परदे के पीछे कोई ज्योति दिखाई दे रही है, मगर जब मैं और सोचता हूँ, जब मैं उस परदे को हटाना चाहता हूँ मेरा सिर चकरा जाता है, पृथ्वी आकाश घूमने लगते हैं, और वह झिलमिलाती हुई ज्योति जाने कहाँ चली जाती है ? मैं फिर अँधेरे में रह जाता हूँ ।

रूप० : तुमने एक बार एक गीत गाया था—'मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?'

दीपक : कहाँ गया था ?

रूप० : रेडियो में । याद आया ?

दीपक : (सोचते हुए) नहीं । मुझे याद नहीं ।

[रूपकुमारी हारमोनियम के पास जा बैठती है ।]

दीपक : मुझे कुछ याद नहीं आता ।

रूप० : देखो मैं याद कराती हूँ ।

[रूपकुमारी बाजे के साथ गाने लगती है ।]

गीत

मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?
सचमुच तेरी रात अँधेरी, संकट में हैं प्राण,
बाँध कमरिया, ढूँढ़ डगरिया, आन मिले भगवान्।
मूरख मन !......

[रूप के साथ दीपक भी गाना शुरू कर देता है]

दीपक : मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ?

रूप० : (उठकर टहलते हुए) मुझे यह गीत बड़ा मीठा मालूम होता है । सुर भी मीठा है, शब्द भी मीठे हैं ।

दीपक : मूरख मन ! होवत क्यों हैरान ।

रूप० : इसके आगे क्या है, जानते हो ?

दीपक : नहीं । (रूप के पास जाकर) यह गीत तुम्हारे मुँह से अच्छा मालूम होता है । तुम गाओ, मैं सुनूँगा ।

[रूपकुमारी रोते-रोते गाती है । दीपक सुनता है]

गीत

आनन्द नगरिया दूर नहीं, अब काहे को घबरावत है ?
भगवान् के घरसे तेरे लिए, इक सुख-सन्देसा आवत है ।
मूरख मन !......

[रूपकुमारी रोते-रोते गाती है, और इसके साथ ही साथ दीपक की ओर देखती जाती है कि उसकी स्मरण-शक्ति लौटती है, या नहीं । मगर दीपक की स्मरण-शक्ति नहीं लौटती । रूपकुमारी गाना बन्द कर देती है, और फूट-फूट कर रोती है ।]

दीपक : तुम रोती क्यों हो ? इसमें मेरा क्या दोष है ? मुझे कुछ याद नहीं आता ।

रूप० : (रोते-रोते) पता नहीं, भगवान् तुम्हें तुम्हारी स्मरण-शक्ति कब वापस देगा ?

दीपक : मुझे भी पता नहीं। मगर तुम वह गीत गाओ, मुझे अच्छा लगता है।

[यशोदा का प्रवेश]

यशोदा : बेटी, तुम्हें मालूम है, आज हम सब लोग काशी जा रहे हैं ?

रूप० : नहीं माँ ! हमें किसी ने नहीं बताया।

यशोदा : तो मैं बताती हूँ, तुम दोनों भी हमारे साथ चलोगे। तैयार हो जाओ।

दीपक : (बालकों के समान) मैं कहता हूँ, क्या काशी बहुत सुन्दर नगरी है ?

यशोदा : (मुस्कराकर) मैं कहती हूँ, यह बात कल काशी चलकर तुमसे पूछूँगी।

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर : (दीपक से) आपको रायबहादुर साहब ज़रा बाहर बुला रहे हैं।

दीपक : मुझे ?

नौकर : जी हाँ, आप को, और (रूप की ओर इशारा करके) आप को भी।

दीपक : (उठ कर) अच्छा ! (रूप से) चलो ! !

●

तीसरा अंक : सातवाँ दृश्य

स्थान—रायबहादुर के घर का आँगन

समय—तीसरा पहर

[दुर्गादास साधु के वेष में आता है। पीछे-पीछे हीरालाल और शामलाल हाथ बाँधे हुए आ रहे हैं।]

दुर्गादास : मुझे यह सुनकर खुशी हुई, कि तुम्हारा बेटा मिल गया है। तुम्हें बधाई हो।

शाम० : मगर स्वामी जी ! हमें अभी पूरा बेटा नहीं, मिला, अभी आधा मिला है। आपके आशीर्वाद से, जो आधा नहीं मिला, वह भी मिल जाएगा, और हमारे पूरे दिल खुश होंगे।

दुर्गादास : भई ! मैं क्या कर सकता हूँ ?

हीरा० : आप सब-कुछ कर सकते हैं। आप महान् पुरुष हैं। आशीर्वाद दीजिए।

[दीपक और रूपकुमारी का प्रवेश]

हीरा० : यही मेरा लड़का है और वह उसकी बहू है। बेटा ! आकर स्वामी जी को प्रणाम करो ! इनका आशीर्वाद हमारी बिगड़ी हुई तक़दीर को सीधा कर देगा। प्रणाम करो !

[दीपक और रूपकुमारी दुर्गादास को प्रणाम करते हैं।]

दुर्गा० : आदमी कुछ नहीं करता। जो कुछ करता है, भगवान् करता है। भगवान् पर भरोसा रखो।

शाम० : महात्मा जी ! आशीर्वाद दीजिए ! हमें आपका आशीर्वाद चाहिए।

दुर्गा० : भगवान् तुम्हारा कल्याण करें !

[बाहर कोई ढोल बजाते हुए गुज़र जाता है । यह वही मसख़रा है, जो नाटक के विज्ञापन बाँट रहा है ।]

हीरा० : स्वामी जी ! अब मेरा मन कहता है, मेरा बेटा ठीक हो जाएगा । अब मुझे शांति मिल जाएगी ।

दुर्गा० : भगवान् कृपा करेगा भाई ! भगवान् पर भरोसा रखो । उसके घर में किसी चीज़ की कमी नहीं ।

शाम० : स्वामी जी, मेरी एक प्रार्थना है ।

दुर्गा० : कहो भाई !

शाम० : मगर आपको स्वीकार करना होगा । यह मैं पहले से कहे देता हूँ ।

दुर्गा० : अगर स्वीकार करनेवाली बात होगी, तो साधु उसे कभी अस्वीकार न करेगा । फरमाइए ।

शाम० : बात यह है, कि मैं कुछ धन धर्म के काम में लगाना चाहता हूँ, और मेरी श्रद्धा यह है कि वह धन आपके पवित्र हाथों से खर्च हो ! हमें इसी से संतोष होगा ।

हीरा० : स्वामी जी ! यह मेरा भी अनुरोध है । और आपको हमारा अनुरोध मानना पड़ेगा ।

दुर्गा० : भाई ! इस समय अगर तुम मुझे धन दे दोगे, तो मेरे आशीर्वाद का प्रभाव जाता रहेगा, और इससे मेरा और तुम्हारा दोनों का अमंगल होगा । आशीर्वाद की क़ीमत नहीं होती ।

[दुर्गादास तेजी से बाहर निकल जाता है ।]

दीपक : पिता जी ! ये कौन महात्मा थे ?

हीरा० : बेटा ! इनकी गृहस्थी मैंने नष्ट की है, और उन्होंने मुझे फिर भी आशीर्वाद दिया है । ये बहुत बड़े महात्मा हैं ।

शाम० : भाई साहब ! हमारा संकल्प तो रह गया । स्वामी जी ने रुपया नहीं लिया ।

हीरा० : तुमने देखा ? यह ग़रीब आदमी कितना अमीर है, और हम अमीर लोग इसके सामने कितने ग़रीब, कितने तुच्छ, कितने छोटे हैं ! हमारी उसके सामने कोई गिनती ही नहीं ।

शाम० : जो आदमी किसी को क्षमा कर सकता है, वह आदमी नहीं देवता है ।

[भंडारी का प्रवेश]

भंडारी : कौन देवता है ?

हीरा० : (भंडारी की बात का उत्तर न देकर) तुम आ गए ? बहुत अच्छा किया । हम आज काशी जा रहे हैं ।

भंडारी० : और अगर काशी यहाँ आ जाए, तो…

शाम० : क्या मतलब ?

भंडारी० : (जेब से विज्ञापन निकालकर और उसे हीरालाल के हाथ में देकर) सूरदास लाहौर में । यानी काशी लाहौर में ।

हीरा० : (खुशी से) शामलाल ! देखो, भगवान् ने सूरदास को यहीं भेज दिया है ।

[शामलाल विज्ञापन पढ़ता है ।]

शाम० : मालूम होता है, हमारी पाप की अवधि अब समाप्त हो गई ।

भंडारी : मेरा मतलब है, सूरदास दीपक के बिना काशी में नहीं रह सकता था । This is divine love.

हीरा० : जाओ, जाकर असबाब खुलवा दो । अब काशी जाने की कोई आवश्यकता नहीं ! हमारा मनोरथ यहीं सिद्ध होगा ।

भंडारी : Amen !

[सब का प्रस्थान]

●

तीसरा अंक : आठवाँ दृश्य

स्थान—कालिदास नाटक कंपनी का रंगमंच

समय—रात

[कालिदास नाटक कम्पनी में "सूरदास का पुत्र-प्रेम" नामक नाटक खेला जा रहा है, जिसमें सूरदास स्वयं सूरदास की भूमिका में काम कर रहा है। दर्शकों में हीरालाल, शामलाल, दीपक, रूप, यशोदा, लाजवन्ती, भंडारी भी उपस्थित हैं। इस समय नाटक का वह दृश्य दिखाया जा रहा है, जब दीपक सूरदास से आकर यह प्राण-घातक प्रश्न पूछता है कि क्या मैं आप ही का पुत्र हूँ ?]

रंगमंच पर

सूरदास : तो बेटा सुनो ! भगवान् तुम्हें लोहे का दिल और पहाड़ का कलेजा दे। बीस साल की बात है, जब काशी में एक दिन गंगा के घाट पर एक अबोध बालक पड़ा था। उसे एक अन्धे भिखारी के प्यार ने उठाया, पाला, पढ़ाया और बड़ा किया। आज वह बालक दीपक है, आज वह अंधा भिखारी सूरदास है।

रंगभूमि का दीपक : तो इसका यह मतलब है, कि मैं अपने घर में पराया हूँ।

सूरदास : (बाँहें फैलाकर) तू अपने घर में पराया नहीं है। तू मेरी अंधी दुनिया की शोभा है, तू मेरे जीवन की निराश निशा में आशा का मीठा स्वर है, तू मेरे काँपते हुए बुढ़ापे की लाठी है।

रंगभूमि का दीपक : नहीं, मै अनाथ हूँ।

सूरदास : मेरे बच्चे ! तू अनाथ नहीं है। तू अपने आपको अनाथ

क्यों कहता है ? अभी तेरा अंधा बाप जीता है, और उसके दिल में तेरे सिवाय और किसी के लिए स्नेह नहीं। तू उसका सब कुछ है।

रंगभूमि का दीपक : अब से एक घंटे पहले मेरी भी यही धारणा थी। मगर अब मालूम हुआ कि मैं अंधेरे में था। मेरे अपने बाप ही ने कह दिया कि मैं तेरा बाप नहीं हूँ।

सूरदास : मैंने कब कहा है कि मैं तेरा बाप नहीं ? तू ही कहता है कि तू मेरा बेटा नहीं है। मगर बेटा ! मेरा भगवान् जानता है कि मैंने तुझे सदा अपना बेटा समझा है, और अब भी, जब तक जीता हूँ, मैं तुझे बेटा ही समझूँगा। और विश्वास रख, जिस दिन तुझे बेटा न समझूँगा, उस दिन मैं मैं न रहूँगा।

रंगभूमि का दीपक : (अपने आप से) मगर मेरे माँ-बाप ने मुझे घाट पर क्यों फेंक दिया ? क्या उनके पास मुझे खिलाने के लिए रोटी न थी ? क्या उनके मुँह में मुझे अपनी संतान कहने का साहस न था ? क्या मैं पाप का पुत्र हूँ ?

सूरदास : (रुंधे हुए गले से) तू अपने बूढ़े बाप के दिल को तोड़ने-वाली, और उसके कानों में गरम सीसा उँड़ेलने वाली बातें क्यों करता है ? क्या तुझे मेरा ख्याल नहीं ? दीपक मेरी बात सुन !

रंगभूमि का दीपक : (सूरदास के पाँव छूकर) दादा, आज्ञा दीजिए।

सूरदास : (झुककर दीपक को पकड़ना चाहता है, मगर दीपक परे हट जाता है।) दीपक ! दीपक !! (जोर से) दीपक !!!

रंगभूमि का दीपक : (जाते-जाते) आशीर्वाद दीजिए कि मुझे मेरा बाप मिल जाए, और मैं दुनिया में अनाथ न रहूँ।

[तेज़ी से चला जाता है]

सूरदास : (इधर-उधर हाथ फैलाकर आगे बढ़ते हुए) मेरे बेटे ! क्या तू जा रहा है ? नहीं आज तुझे नहीं जाना चाहिए। आज तेरा परीक्षा-फल निकला है। कल मेरे घर में तेरे मित्रों का निमंत्रण है, और

तू मुझे छोड़कर जा रहा है ! दीपक इधर आ ! मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् तेरे बाप को इसी घर में तेरे पास भेज दे । (कोई उत्तर न पाकर और उत्तेजित होकर) दीपक ! (ज़ोर से) दीपक ! ! (और भी ज़ोर से) मैं कहता हूँ, लौट आ ! मैं कहता हूँ, मेरे पास चला आ ! (रोते हुए) दीपक ! दीपक ! ! बेटा, तू तो इतना निर्मोही न था । तेरा वह प्यार कहाँ चला गया ? दीपक ! दीपक ! ! मैं तेरा बाप हूँ । मुझे छोड़ कर न जा । मैं अन्धा हूँ ।

[दर्शकों में बैठा हुआ दीपक एकाएक जोश से तनकर खड़ा हो जाता है । हीरालाल और शामलाल इत्यादि उसकी ओर आश्चर्य और आशा के मिश्रित भावों से देखते हैं । दर्शक दीपक से बैठ जाने को कहते हैं, मगर वह किसी की परवाह नहीं करता । चारों ओर शोर मच जाता है ।]

एक दर्शक : (चिल्लाकर) बैठ जाओ ! बैठ जाओ !

दूसरा दर्शक : कृपा करके बैठ जाओ ! हमें कुछ दिखाई नहीं देता । बैठ जाओ, हमें नाटक देखने दो ।

तीसरा : बैठ जाओ ।

शाम० : (हीरालाल से) मेरा ख्याल है, इसे होश आ रहा है । ज़रा देखिए, इसका चेहरा बदल रहा है ।

हीरा० : (दीपक की ओर देखते हुए) देखते चलो, भगवान् क्या करता है ! शायद—

सूरदास : (रंगभूमि पर अभिनय करते हुए) दीपक ! मैं कहता हूँ तुम मुझे छोड़कर मेरी खोज करने कहाँ जा रहे हो ? दीपक ! दीपक ! ! इधर आओ ! मेरी बाँहें तुम्हारे लिए खुली हैं ।

असली दीपक : (कुछ-कुछ होश में आकर) यह मुझे कौन बुला रहा है ? (रूप से) क्या तुम जानती हो ?

रूपकुमारी : यही सूरदास है । क्या तुम इसे नहीं पहचानते ? ज़रा याद करो ।

[दीपक माथे पर हाथ फेरता है ।]

सूरदास : (दीपक की आवाज़ सुनकर) यह किस की आवाज़ थी ? यह कौन बोला था ?

असली दीपक : यह मैं दीपक हूँ ! क्या आप मुझे बुला रहे हैं ? (आश्चर्य से चारों ओर देखता है ।) आप कौन हैं ? मैं यहाँ हूँ । मैं दीपक हूँ ।

सूरदास : (पहचान कर और खुशी के मारे चिल्लाकर) कौन ? दीपक ! क्या तू दीपक है ? मेरा दीपक ?

असली दीपक : (बिल्कुल होश में आकर) कौन दादा ! क्या यह आप हैं ? दादा...दादा...

रूप० : (खुशी से) होश आ गया !

सूरदास : (चिल्लाकर) दीपक तू कहाँ है ?

असली दीपक : (चिल्लाकर) दादा मैं यहाँ हूँ ।

सूरदास : (और भी ऊँची आवाज़ से) दीपक !

असली दीपक : (रोते हुए) दादा......

सूरदास : (आगे बढ़कर) तू आ गया ? तू किधर है ? तू मेरे पास आ ! दीपक, तू मेरे पास आ ! ! तू जानता है, मैं अन्धा हूँ, मैं गिर पड़ूँगा ।

असली दीपक : (आगे बढ़कर) आया दादा ! मैं आया ! मैं आया !

सूरदास : (भुजाएँ फैलाकर) दीपक ! तू आता क्यों नहीं ? तू देर क्यों करता है ?

दीपक : (रंगमंच पर चढ़कर और सूरदास के गले से लिपटकर) दादा ! तुम्हारा दीपक आ गया ।

[हॉल में कोलाहल मच जाता है । लोग नहीं समझते कि आज उनके सामने रंगभूमि का नाटक और जीवन का मिलाप हो गया है और जिस दीपक को सूरदास नाटक में खोज रहा था वह उसे सचमुच मिल गया है । हीरालाल, शामलाल, रूपकुमारी, यशोदा सजल नेत्रों से सूरदास के

पुत्र-स्नेह का यह स्वर्गीय दृश्य देखते हैं और रंगभूमि पर चढ़ जाते हैं। भंडारी दर्शकों में चुपचाप खड़ा रहता है, और यह सब कुछ देखता है। बाटलीवाला और जयकृष्ण रंगभूमि पर आकर खड़े हो जाते हैं।]

बाटली० : परदा गिरा दो। परदा गिरा दो।

जय० : परदा गिरा दो।

सूरदास : (दीपक को गले से लगाए हुए) मैनेजर साहब ! मेरा बेटा आ गया !

[परदा गिर जाता है। हॉल में और भी शोर मच जाता है। इतने में बाटलीवाला आकर परदे के आगे खड़ा हो जाता है और लोगों को चुप रहने का संकेत करता है। हॉल में सन्नाटा छा जाता है।]

बाटली० : सज्जनो ! आप यह सुनकर खुश होंगे कि हमारी नाटक कम्पनी जिस उद्देश्य को लेकर काशी से निकली थी, वह उद्देश्य आपकी लाहौर नगरी में आकर पूरा हो गया। दीपक बाप को छोड़ कर चला आया था, और उसे भूल गया था। मगर बाप का प्यार बेटे को न भूला था। वह प्रतिदिन इस नाटक में बेटे को रो-रोकर पुकारता था, और निराश होकर रोता हुआ लौट जाता था। आखिर आज बेटे के हृदय ने बाप की पुकार को सुना, और उसे लेकर बाप के चरणों में उपस्थित हो गया। (तालियाँ) सज्जनो ! आज से पहले नाटक सूरदास के आँसुओं पर समाप्त होता था, आज इस नाटक में सूरदास के आँसू समाप्त हो गए हैं। मेरी भगवान् से प्रार्थना है कि अब ये पिता-पुत्र कभी अलग न हों।

[बाटलीवाला सिर झुकाता है। लोग तालियाँ बजाते हैं।]

यवनिका-पतन

सुदर्शन के कहानी-संग्रह

सुदर्शन-सुधा

सुदर्शन की चुनी हुई शिक्षा-प्रद और मनोरंजक कहानियों का संग्रह ४.००

सुदर्शन की श्रेष्ठ कहानियाँ

सुदर्शन की कहानियों में से सुदर्शन की अपनी चुनी हुई कहानियों का संग्रह। २.५०

नगीने

ऐसी कहानियाँ, जो मूल्यवान नगीनों से कम नहीं हैं। ३.००

पनघट

आदर्शवादी, मानवता से ओतप्रोत कहानियों का दूसरा लोकप्रिय संग्रह। ४.००

पुष्पलता

ऐसी कहानियाँ, जिनमें कथा और कथानक का कमाल नजर आता है। २.५०

तीर्थयात्रा

इसकी हर कहानी साहित्य-संसार का एक तीर्थ है। ४.००

सुप्रभात

देशभक्ति और स्वतन्त्रता के संग्राम की कहानियाँ। ३.००

दीपाली

हिन्दी के नामांकित कहानी लेखकों की श्रेष्ठतम कहानियों का संकलन। २.५०

विद्रोही आत्माएँ

खलील जिब्रान की चार जवान कहानियाँ, जिनका अनुवाद सुदर्शन ने अरबी की शैली में किया है! हिन्दी में अपने ढंग की पहली पुस्तक है। २.७५